पाकिस्तान में
जैन मंदिर

– भूषण शाह

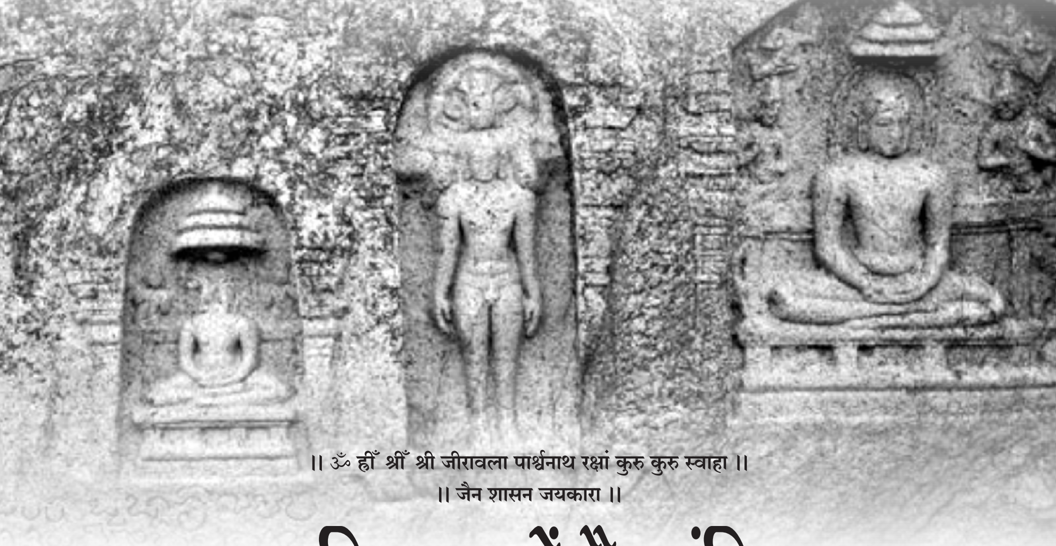

पाकिस्तान में जैन मंदिर

देवलोक से दिव्य सान्निध्य –

प.पू. गुरुदेव श्री जम्बूविजयजी महाराज

मार्गदर्शन –

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी

संपादक –

भूषण शाह

प्रकाशक/प्राप्ति स्थान

मिशन जैनत्व जागरण

'जंबूवृक्ष' सी/504, श्री हरि अर्जुन सोसायटी,
चाणक्यपुरी ओवर ब्रिज के नीचे,
प्रभात चौक के पास, घाटलोडीया,
अहमदाबाद –380 061
मो. 09601529519, 9429810625
E-mail - shahbhushan99@gmail.com

मूल्य–100/– रुपये

पाकिस्तान में जैन मंदिर

© लेखक एवं प्रकाशक
* प्रतियाँ : 1000
* प्रकाशन वर्ष : वि. सं. 2073, ई. सं. 2017
* मूल्य : 100 ₹
* न्याय क्षेत्र : अहमदाबाद

प्राप्ति स्थान

'मिशन जैनत्व जागरण' के सभी केन्द्र

अहमदाबाद
101, शान्तम् एपार्ट.
हरिदास पार्क,
सेटेलाइट रोड,
अमहदाबाद

जयपुर (राज.)
आकाश जैन
ए/133, नित्यानंद नगर
क्वीन्स रोड, जयपुर

नाशिक (महा.)
आनंद नागशेठिया
641, महाशोबा लेन
रविवार पेठ,
नाशिक (महा.)

आग्रा (उ.प्र.)
सचिन जैन
डी-19, अलका कुंज
खावेरी फेझ-2
कमलानगर - आग्रा

Chennai
Komal Shah
B-13,kent apts,
26 Ritherdon rd, Vepery,
Chennai - 600007

मुंबई
हेरत मणियार
ए/11 , ओम जोशी अपार्ट
लल्लुभाई पार्क रोड,
ऐंजललेंड स्कूल के सामने
अंधेरी (वेस्ट) मुंबई

भीलवाड़ा (राज.)
सुनिल जैन (बालड़)
सुपार्श्व गृह जैन मंदिर के पास
जमना विहार-भीलवाड़ा

Bangalore
Premlataji Chauhan
425, 2nd Floor,
7th B Main, 4th Block
Jaynagar, **Bangalore**

लुधियाणा
अभिषेक जैन,
शान्ति निटवेर्स
पुराना बाजार
लुधियाणा (पंजाब)

उदयपुर (राज.)
अरुण कुमार बडाला
अध्यक्ष अखिल भारतीय
श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक
युवक महासंघ उदयपुर शहर
427-बी, एमराल्ड टावर,
हाथीपोल,
उदयपुर-313001 (राज.)

* प्रस्तुत पुस्तक पू. साधु-साध्वी भदवंतों को पत्र प्राप्त होने पर भेंट स्वरूप भेजी जाएगी। * आवश्यकता न होने पर पुस्तक को प्रकाशक के पते पर वापस भेजने का कष्ट करें। * आप हमें Online भी पढ़ सकते हैं.... www.jaineliabrary.org. पर। * पुस्तक के विषय में आपके अभिप्राय अवश्य भेजें। * पोस्ट से या कुरियर से मंगवाने वाले प्रकाशक के एड्रेस से मंगावा सकते हैं।

* मुद्रक : ममता क्रियेशन, मुंबई (77384 08740)

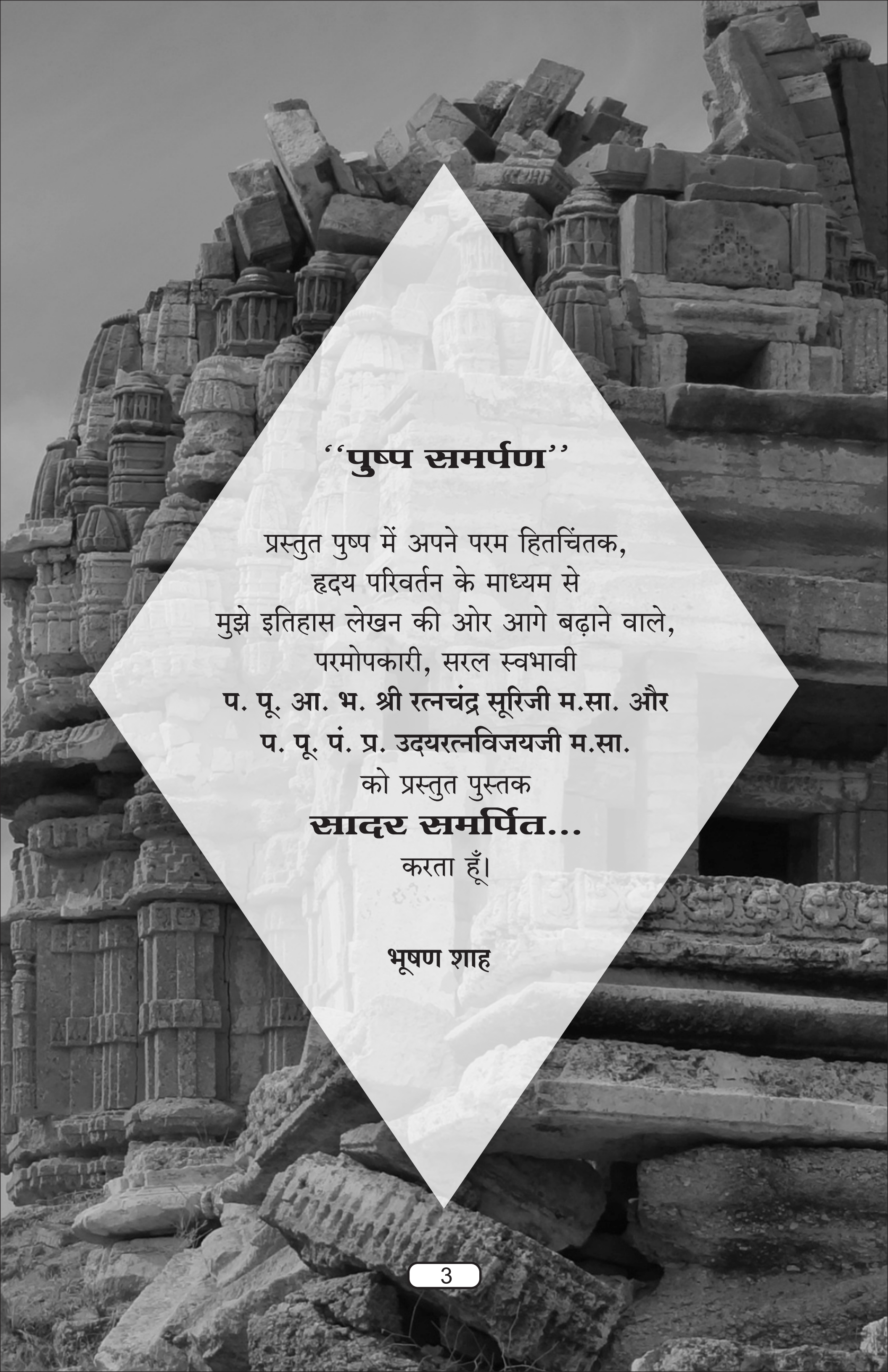

''पुष्प समर्पण''

प्रस्तुत पुष्प में अपने परम हितचिंतक,
हृदय परिवर्तन के माध्यम से
मुझे इतिहास लेखन की ओर आगे बढ़ाने वाले,
परमोपकारी, सरल स्वभावी
प. पू. आ. भ. श्री रत्नचंद्र सूरिजी म.सा. और
प. पू. पं. प्र. उदयरत्नविजयजी म.सा.
को प्रस्तुत पुस्तक
सादर समर्पित...
करता हूँ।

भूषण शाह

अनुक्रमणिका
INDEX

क्र.		पृ. नं.
1.	प्रस्तावना	5
2.	संपादक की कलम से...	7
3.	पाकिस्तान के जैन मंदिरों का इतिहास...	9
4.	हरप्पा संस्कृति (मोहन–जो–दड़ो) पाकिस्तान...	21
5.	हरप्पा संस्कृति में जैन परंपरा...	26
6.	लाहोर में जैनाचार्य विजय सेनसूरिजी की पधरामणी...	36
7.	श्री हेमविजयगणि कृत विजयसेनसूरि स्तुति... रचना स्थल – लाहौर	39
8.	लाहौर में रचित विजयसेनसूरि रास...	41

प्रस्तावना...

'**पाकिस्तान में जैन मंदिर**' नामना प्रस्तुत पुस्तकमां श्री भूषणशाहे - वर्षो पूर्वे प्रकाशित थयेला पुस्तकोना आधारे परिचय आप्यो छे. साथे साथे मोहन जो-दडो अने हरप्पा ना उत्खननमांथी प्राप्त शिल्पो वगेरेनुं विवेचन करी जैन प्रतिमाओ अने अन्य मुद्दाओनी समज आपी छे.

आजना कहेवाता विद्वानोमां जैन धर्म विषे क्यांक अज्ञान अने क्यांक पूर्वग्रहो होवाना कारणे जैन धर्मने लगतां पुरातत्त्वीय साक्ष्यो ना महत्त्वने उजागर करवामां घणी कचाश रही छे. गेरसमजना कारणे जैन शिल्पोने बौद्धधर्म जोडे सांकळी देवामां आव्या छे. आ बधी गरबडोने दूर करवा पूर्वग्रहोथी मुक्त बनी अने जैन परंपरानो व्यवस्थित अभ्यास करी इतिहासनुं पुनर्लेखन करवानी खास जरूर छे. भूषणशाह नो प्रयास पण आ दिशामां एक कदम छे.

भारत-पाकिस्तानना विभाजन वखते घणां जिनबिंबो, ज्ञानभंडारो, वगेरे पाकिस्तानथी भारत लाववा सुश्रावकोए प्रयत्नो करेला.

वाव तालुका (जि. बनासकांठा)ना केटलाक साहसिक श्रावकोए सिंध-थरपारकरमां बीरावावना जिनालयमांथी श्री धर्मनाथ प्रभुजी आदिना आरसना जिन बिंबोने लाववा रण पार करीने वाव थी बीरावाव पहोंचेला. पाकिस्तानी सैनिकोथी बचवा एमनी ट्रक जेवी गाडीने आडी-अवळी फेरवीने सलामत आवी पहोंचेला. आ साहस कथानी वात ए भाग्यशाळी श्रावको पैकी बुकणा (ता. वाव) निवासी वाघजीभाई ना मुखेथी अमे सांभळी त्यारे सानंद आश्चर्य थयेलुं.

हजु पण पाकिस्तानमां अनेक जिनबिंबो अने प्राचीन ग्रंथो छे.

तत्कालीन भारतना वडा प्रधान श्रीमान इंदिरागांधीए पाकिस्तान जोडे सीमला करार कर्या एमां एक कलम एवी छे के बंने देशोए धार्मिक-सांस्कृतिक सामग्रीओ जे ते देशनी होय तेने परत करवी.

आ करार अन्वये पू. आ. भ. श्री वल्लभसूरीश्वरजी म.सा. विभाजन वखते जे ज्ञानभंडारने पाकिस्तानमां गुप्त अने सुरक्षित करीने आवेला ते ज्ञानभंडार भारतमां लाववामां आव्यो. आजे आ ज्ञानभंडार दिल्ली स्थित विजयवल्लभ स्मारकमां विद्यामान छे. आवी रीते बीजी पण सामग्रीओ पाकिस्तानथी लाववा प्रयासो करवा घटे.

भागला वखते पार्कर प्रदेशथी आवेला एक वयोवृद्ध सुश्रावके मने वर्षो पहेलां जणावेलुं के अमे ज्यारे अमारा घर–बार छोडी भारत आववा रवाना थया त्यारे जिनालयमां बिराजमान मूलनायक भगवानने अमे जमीनमां दाटी ने आव्या छीए. मने ए भाईए चोक्कस जग्या पण चितरीने बतावी. ए समये आ प्रतिमाने लाववा माटे कोई उपाय पण देखातो न हतो.

आजे पाकिस्तान स्थित जैन मंदिरोनी विगतो ज नहीं एनी विडियो फिल्मो पण अनेक U-Tube के विविध वेबसाइटो ऊपर मुकवामां आवी छे. अमारी जाणमां जे विगतो छे ते – ***Jain Temple in Pakistan, Jain Temple in Thar Parker, Jain Temple in Nagar Parker, Jain Temple in Sindh.***

थोड़ा समय पहेलां 'साइन शो' नामना सामयिकमां मुझफर हुसेननो एक लेख वांचवामां आवेलो एमां श्री हुसेने अफघानीस्तान वगेरे देशोमां ठेर–ठेर जैन तीर्थंकरोनी मूर्तिओ होवानुं अने ए विगतोना संग्रहित करतुं एक पुस्तक 'दास्ताने तीर्थंकर' पोते जोयुं होवानुं लख्युं छे.

आजे पण समग्र भारतमां क्यांय पण जमीनमांथी प्राचीन शिल्पो वगेरे निलळे छे तेमां 90% जैन शिल्पो होय छे. एक जमानामां अखंड भारत – जेमां वर्तमानना पाकिस्तान–बंगलादेश–अफगानिस्तान–ब्रह्मदेश वगेरे नो समावेश थाय छे जेहमां जैनो मोटी संख्यामां हता एना पुरावा अनेक मळे छे. आपणे इतिहासने समज्वानी खास जरुर छे.

श्री भूषण शाहना आ प्रयासने अंतरना आशीर्वाद....

– आ. विजय मूनिचन्द्रसूरि
सुरत – सं. 2072
(आ. सिद्धिसूरिजी का समुदाय)

संपादक की कलम से...

अखंड भारतवर्ष में आज के पाकिस्तान, अफगानिस्तान से लेकर म्यानमार, थाईलेण्ड यह देश समाविष्ट थे। परंतु आज भारत वर्ष ने म्लेच्छों के प्रभाव से अफगानिस्तान बाद में पाकिस्तान, बांगलादेश आदि को खो दिया है। आज पाकिस्तान में जो-जो जैन मंदिर आजादी से पूर्व थे... जहाँ-जहाँ जैन धर्मी बसते थे उनका विवरण प्रस्तुत पुस्तक में मैंने संक्षिप्त रूप से किया है। इस कार्य के लिये मुख्यतः जैन तीर्थ सर्वसंग्रह, सिंध तीर्थयात्रा संग्रह आदि पुस्तकों का सहारा लिया है। इन स्थानों की जानकारी के लिए महोम्मद तारिफ आदि युवानों की सहायता मिली है। उन्होंने भी स्वयं की जिम्मेदारी समझकर इस कार्य को पूर्ण किया है। कुछ बातें और भी बताने का प्रयास किया है । जो निम्नोक्त हैं-

* पाकिस्तान के हाला नगर का श्री संघ ब्यावर में आकर के बसा है। आज भी 'हाला' संघ के नाम से प्रसिद्ध है।
* पाकिस्तान के गुजरानवाला का रजतमय रथ आज रुपनगर दिल्ली की शोभा बना हुआ है।
* पाकिस्तान के नागार्जुन पर्वत में रही नीलम की अद्वितीय प्रतिमा लुधियाणा में बिराजमान है।
* पाकिस्तान के वित्तभयपुर पट्टण (तक्षशिला) नगर के जीवित स्वामि की गोशिर्ष चन्दन की प्रतिमाजी-संग्रह में है।
* जब पू. वल्लभसूरि म. पाकिस्तान के गुजरानवाला से अमृतसर आए तब वे शक्तिपीठ तुल्य पू. आत्मारामजी म. की पादुका किसी कारण से नहीं ले पाए यह आश्चर्य की बात है।
* पू. आत्मारामजी के समाधि मंदिर (गुजरानवाला पाकिस्तान) की प्रतिष्ठा पू. आ. कमलसूरिजी म. आदि के हाथों हुई थी। आज उस स्थान पर पोलिस स्टेशन है।[1]
* रावलपिंडी का ज्ञानभंडार आज लाहोर म्यूजियम में मौजूद है।
* 'मुलतान'(पाकिस्तान) से जयपुर आया हुआ श्री संघ एवं वहाँ का मंदिर मुलतान मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। जहाँ मुलतान पार्श्वनाथ प्रभु

1. प्रस्तुत मंदिर की प्रतिकृति शाहदरा (दिल्ली) में बनाई गई है।

बिराजमान हैं।[1]

* प्राचीन हस्तप्रतादि वी. एल. (वल्लभ स्मारक) में है। प्रतिमाएँ पंजाब के कुछ नगरों में भी स्थित है।[2]
* लाहोर में आज भी जैन मंदिर चौक है।[3]
* आजादी के समय पू. वल्लभसूरि म.सा. गुजरानवाला थे। जब स्थानकवासी साधु भ. आदि फ्लाईट में बैठकर भारत आ गए तब आ. श्री सभी जैन बंधुओं को साथ लेकर सरहद पार करके भारत आए। पू.आ.श्री की भावना की बारंबार अनुमोदना। पू. श्री के साथ साध्वी देवीश्रीजी भी भारत आए।

इस पुस्तक में वर्तमान में प्राप्त हुए खंडहर जिन मंदिरों के फोटोग्राफ मैने डाले हैं। लाहोर म्युजीयम में से जिन प्रतिमा के फोटो भेजने के लिए सर अबदुल रहमानजी का मैं आभारी हूं।

लाहोर में जब जगदगुरु प. पू. आ. भ. हीरसूरिजी म.सा. के पट्टधर प. पू. आ. भ. सेनसूरिजी म.सा. पधारे तब क्या स्थिती थी वह विजयसेनसूरि रास से पता चल जाएगा। मोहन-जो-दड़ो के इतिहास से हम जैन धर्म की प्राचीनता सिद्ध कर सकते हैं।

सुज्ञ जन इतिहास के इन पृष्ठों को पढ़कर प्रेरणा ले की हमारा धर्म विश्व में कई जगह पर व्याप्त था और हमें पुनः इस धर्म को विश्वधर्म बनाना है।

इति शुभम्

लि. **भूषण शाह**

---

1. दिगंबर संप्रदाय में भी मूलतान संघ मंदिर विद्यामान है।
2. लुधियाणा
3. मंदिर का तो अब नाश ही हो चुका है।

पाकिस्तान के जैन मंदिरों का इतिहास

इतिहास गवाह है कि जैनशासन पूरे विश्व में फैला हुआ था। कभी सोचता हूँ की भारत में रहे हुए मंदिरों की रक्षा करने में हम असमर्थ हैं तो फिर ये तो भारत के बहार की बात है। **किन्तु आज हम 40 करोड़ से 40 लाख कैसे बन गए। इस महत्त्व के प्रश्न का उत्तर सिर्फ यह इतिहास दे सकता है।** इसीलिए इतिहास को जानना आवश्यक है।

पाकिस्तान के जिनमंदिरों के विषय में लिखने का कभी सोचा न था... परंतु मेरा लुधियाणा शिबिर के वक्त पाकिस्तान से आए परिवारों से मिलना हुआ। जयपुर निवासी श्रीमती अनुबेन जैन की प्रेरणा द्वारा कार्य शुरु किया और आज यह विषय आपके समाने प्रस्तुत है। मेरे प्रयास को आप सफल बनाएँ यही आशा है।

पाकिस्तान– अफगानिस्तान का क्षेत्र जैनशासन के लिए महत्त्वपूर्ण रहा है– इतिहास की दृष्टि से यहाँ कई महत्त्वपूर्ण स्थल हैं । जैसे तक्षशिला, गुजरानवाला (पू. आत्मारामजी म. की समाधि भूमि) लाहौर, गोड़ीथार (गोडीजी पार्श्वनाथ का उद्गम स्थल), देराउर (दादा जिनकुशल सूरिजी की अंतिमभूमि) आदि यह पिछले 2200 सालों के महत्त्वपूर्ण स्थल है। इसके अलावा हरप्पा, मोहन–जो–दड़ो आदि जो 3500 से 4000 वर्ष प्राचीन हैं वो भी यहीं है। जहाँ से जैनधर्म के कई महत्त्वपूर्ण अवशेष प्राप्त हुए हैं। मेरे अनुमान व आधार से तारातंबोल आदि नगरी भी इसी क्षेत्र में थी[1].... काश्मीर की शारदा शक्तिपीठ आज पाकिस्तान के हस्तक जो काश्मीर[2] है वहाँ है। बलुचिस्तान में कई गुफाओं में जैन प्रतिमाजी है। हींगलाज माता का मुख्य स्थल भी पाकिस्तान में है। जहाँ अंबिका देवी के प्रतिबोध से हिंगुलराक्षस ने सिंध से शत्रुंजय आनेवाले जैन यात्रियों को परेशान करना बंद किया था। आज भी वहाँ शिलाओं में जैन प्रतिमाएं देखी जा सकती हैं। इसके अलावा पाकिस्तान के विभिन्न म्युजियमों में भी जैन धर्म के हजारों अवशेष देख सकते हैं।

पाकिस्तान–भारत 1947 में हुए विभाजन के समय करीब 90% जैन भारत आ चुके थे परंतु 10% लोग वहाँ थे जो रियासत के मालिक थे। अधिकृत तरीके से पता लगा है कि आज भी 17 जैन परिवारों के 300 लोग पाकिस्तान में रहते हैं।[3] पू. आ. विजयवल्लभसूरिजी म.सा. के साथ कई जैन भारत आ चुके थे। आज जो वहाँ हैं वो कैसे हैं ? यह प्रश्न है।

---

1. देखिये – 'जैन तीर्थ तारातंबोल'
2. POK
3. सिन्ध–कराची में

पाकिस्तान स्थित जैन मंदिरों की भावयात्रा

आइये हम आपको पाकिस्तान के जैन मंदिरों की क्रम अनुसार भावयात्रा करवाते हैं... यह यात्रा दर्दनाक है, लेकिन रोमांच खड़ा करने वाली भी है।

1. **करांची–** यहाँ रणछोड़ लाईन पर जैन मंदिर था... आज भी जैन मंदिर खण्डहर हालत में देखा जा सकता है। सं. 1961 में श्री संघ द्वारा यहाँ मंदिर बनावाया गया, मूलनायक श्री चिंतामणी पार्श्वनाथ हैं (थे)। मुख्य बाजार में भी श्री संभवनाथ स्वामि का जिन मंदिर आज भी है, जिसकी प्रतिष्ठा आ. जिनरत्नसूरि म.सा. ने करवाई थी। निर्माण शेठ मानसिंग भोजराजजी ने करवाया था। शेठ नरशीनाथा ने यहाँ धर्मशाला का निर्माण करवाया है। जैनों के 400 घर हैं (1932 में)। नगर के बाहर सुन्दर आम्रवन में दादावाड़ी है। (जहाँ जिनरत्नसूरिजी की चरणपादुका है)।

2. **हालां –** आदम से 16 कि.मी. हाला नगर है... यहाँ 3 मोहल्लों में जैनों की बस्ती है। सभी लोग जैन हैं। जैसे जैनों का छोटा सा नगर हो ऐसा लगता है। इस नगर में भी चिन्तामणी अष्टफणा पार्श्वनाथ का मंदिर है। मंदिर में 1579 का लेख है। 'सं. 1579 माग व. आ. जिनचंद्रसूरि शिष्यैः श्री जिनकुशलसूरिभिः प्रतिष्ठित सा पाता सुश्रावकेण।' अंबिका माताजी की भव्य प्रतिमाजी व. समवसरण है। यहाँ हस्तिलिखित ज्ञान भंडार में 1700 हस्तप्रतें हैं। मंदिर के अन्दर 7 स्फटिक की प्रतिमा हैं। 300 जैनों के घर हैं (1932में)।

3. **उमरकोट –** यहाँ शांतिनाथ भगवान जिनमंदिर है। 40 जैनों के घर भी हैं (1932 में)। यहाँ ताडपत्रीय ज्ञान भंडार है। मंदिर में आर्यकालिकसूरिजी के चरण हैं। प्रतिमाजी संप्रतिकालिन है।

4 **धाराकि –** यहाँ संभवनाथ भगवान का सुन्दर जिनमंदिर है... यह मंदिर 1904 में कच्छ मांडवी निवासी शेठ मानसिंग भोजराजजी ने बनवाया था और खरतरगच्छाचार्य जिनरत्नसूरिजी के हाथों प्रतिष्ठा करवाई थी। यहाँ 22 जिन प्रतिमाएँ, दादागुरु की 3 चरण पादुकाएँ, स्फटिक की 5 प्रतिमाजी हैं। नगर में जैनों के 17 घर हैं(1932 में), 2 उपाश्रय व धर्मशाला है।

5. **कवेटा–** यहाँ संभवनाथ स्वामि का घर मंदिर है... संभवनाथ भगवान की चल प्रतिष्ठा प. पू. आ. जिनरत्नसूरिजी के द्वारा शेठ मानसिंग भोजराजजी ने 1909 में करवाई थी। जैनों के 2 घर हैं, यहाँ जमीन से कई प्रभुप्रतिमाएँ

निकली थी, जो मंदिर के भूगर्भ में हैं। इन प्रतिमाओं पर सांडेरक गच्छ के आ. यशोभद्रसूरिजी का उल्लेख है और सरस्वती माताजी के प्राचीन चरण हैं।

6. **देरानवाब–** देरानवाब का नाम देराउर है यहाँ दादा जिनकुशलसूरिजी का स्वर्गवास हुआ था। देरानवाब किल्ले से यह स्थान 3 कि.मी. की दूरी पर है। देरानवाब में भी श्री सुमतिनाथ स्वामिजी का जिनमंदिर है। यहाँ प. पू. आ. भ. जिनरत्नसूरिजी म.सा. की प्रेरणा से शेठ मानसिंग भोजराजजी ने मंदिर बनवाकर 1904 में प्रतिष्ठा करवाई थी। जैनों के कोई घर नहीं हैं। खरतरगच्छाचार्य जिनभद्रसूरि ज्ञानभंडार है जहाँ चंदन की कई प्रतिमाएँ, गोशीर्ष चंदन के महावीर स्वामी आदि रखे हुए हैं (जो आज भारत लाए जा चुके हैं)। ताड़पत्री ज्ञानभंडार में कल्पसूत्र की 80 प्रते हैं।

7. **डोगराजी खान –** यहाँ ब्लोक नं. 2 भावडो का मोहल्ला में श्री आदीनाथ भगवान का मंदिर है। जैनों के 85 घर (1932 में) हैं। गाँव से 1 कि.मी. कि दूरी पर दादावाडी है, जहाँ पू. हीरविजयसूरिजी की चरण पादुका है इन चरण पादुका की प्रतिष्ठा देरानवाब में हुई ऐसा लिखा है। पुराना डोगराजीखान में भी जिन मंदिर हैं। 1821 श्री जिनसागर सूरि व आ. जिनसुंदरसूरि खरतरगच्छ... हस्तलिखित ज्ञानभंडार है।

8. **मुलतान–** जहाँ जैनों के 120 घर (1932 में) हैं। मूलनायक चिन्तामणी पार्श्वनाथ का जिन मंदिर है। प्रभुजी संप्रतिकालिन हैं। यहाँ दादावाडी है जो 120 बीघा भूमि में फैली है.. आम्रवन है... बीच में दादागुरु जिनदत्तसूरिजी के चरण पादुका हैं। यहाँ ज्ञानभंडार है , भंडार में पू. सा. मंजूश्रीजी ने आलोचना में लिखी ज्ञानसार की 70 प्रति मौजूद हैं। यहाँ जैन पेन्टींग भी दर्शनीय है।

9. **बन्नुं –** यहाँ भावडों का मोहल्ला है।यहाँ के सभी जैन 19 कि. मी. दूर लीतांबर से आए हैं। सभी जमीनदार हैं, ओसवालों के 280 परिवार (1932 में) हैं। भावडों का मोहल्ला में श्री युगमंधर स्वामी का मंदिर है । यहाँ 25 देवरियों में 380 भगवान हैं। इसमें से 3 स्फटीक के 2 माणिक के, 2 पन्ने के हैं। प्रतिमाजी पर लेख है–'सं. 1606 वर्ष माघ शुक्ल तिथि, पू. आ. लक्ष्मीसागरसूरि प्रतिष्ठितं। लीतांबर में दादागुरुवाड़ी है, जहाँ चारों दादागुरु के चरण हैं। यहाँ पद्मावती माता की प्रतिमा आ. जिनपतिसूरिजी के हाथों प्रतिष्ठित है। विशाल ज्ञान भंडार भी है।

10. **सुबासुखेल –** यहाँ चिंतामणी पार्श्वनाथ का 1919 में बना हुआ जिन मंदिर है। जैनों के घर नहीं हैं (1932 में) । पंचधातु के 13 भगवान हैं।

11. **कालाबाग –** यहाँ लोंकागच्छीय यतिओं का वास है। 16 यति के परिवार हैं। श्री अजितनाथ भगवान का मंदिर है जिन पर सं. 1663 का उल्लेख है। जैनों के 16 घर (1932 में) हैं।

12. **पिंडदादखान–** यहाँ सुमतिनाथ स्वामी का 1907 में बना मंदिर है। भगवान की प्रतिमा पर उल्लेख है कि–'पिप्पलगच्छे माणिक्यसूरिभिः सं. 1303 ।' जैनों के 400 घर (1932 में) हैं। ज्ञान भंडार है। मंदिर में तपागच्छाचार्य जगत्‌चंद्र सूरिजी के चरण हैं।

13. **नागार्जुन पर्वत –** माडी इंडस स्टेशन के सामने नागार्जुन पर्वत है, यहाँ गुफाओं में जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं हैं। बीच में यहाँ रत्नमय प्रभु प्रतिमा थी.... स्थंभन पार्श्वनाथ प्रभु का मूल स्थान यहाँ का कहा जाता है। यहाँ से प्रतिमाजी खान का डोगरा लाड़ गई थी, और बाद में वहाँ से आज लुधियाणा लाई गई है। प्रतिवर्ष पर्युषण पर्व पर इस प्रतिमा के दर्शन करवाये जाते हैं।

14. **तक्षशिला–** रावलपिंडी से 30 कि.मी. दूर तक्षशिला है। जैन ग्रंथों में प्रभु ऋषभदेव के समय से तक्षशिला का उल्लेख है। बौद्ध ग्रंथों में भी यहाँ का उल्लेख मिलता है। भगवान ऋषभदेव ने भरत को अयोध्या बाहुबली को बहली देश सौंपा था। बलही की राजधानी तक्षशिला थी। बाहुबली ने प्रभु ऋषभदेव के पदार्पण की स्मृति में यहाँ धर्मचक्र तीर्थ बसाया था। चरण चिन्ह का स्तूप बनवाया था। महानिशिथ सूत्र में तक्षशिला को धर्मचक्र भूमि कहा है। छेद सूत्रों में तक्षशिला में शिथिलाचारी साधुओं के कारण संवेगी साधुओं को जाना वर्जित किया है। प्रभावक चरित्र में उल्लेख है कि यहाँ 500 जैन मंदिर हैं। तीसरी शताब्दि में यहाँ महामारी रोग फैल गया था। देवी ने कहा की मलेच्छों के आक्रमण अत्याचारों से सभी देव–देवी यहाँ से चले गए हैं। अगले 3 साल में तूर्क इस नगरी का ध्वंश करेंगे। महामारी से बचने के लिए नाडोल नगर में आ. मानदेवसूरिजी के पास जावें। यहाँ हो रहे उत्खनन से मथुरा के कंकाली टीले से जो सामग्री प्राप्त हुई थी वैसी ही सामग्री यहाँ से प्राप्त हो रही है। हर घर में मंदिर के अवशेष प्राप्त हो रहे हैं। पं. कल्याण वि.के मत से ओसवाल जैनों का यह उत्पत्ति स्थान है। वर्तमान में

देश–विदेश से हजारों पुरातत्त्ववीद रीसर्च का कार्य यहाँ आकर कर रहे हैं। सब से ज्यादा सामग्री जैन धर्म की मिल रही हैं। इस दिशा में जैन समाज को प्रयत्न करना जरूरी है।

15. **लाहोर –** जैनों के कई ग्रंथों में लाभपुर का वर्णन मिलता है, जो लाहोर है। यहाँ थडियाँ भावडयाँन में जैनों का बड़ा मंदिर है। आधा मंदिर दिगंबरों के हाथ में है। यहाँ समयसुन्दर उपाध्याय ने 'राजानो ददते सौख्य' आठ अक्षर के आठ लाख अर्थ किये थे। जिसे सुनकर अकबर प्रभावित हो गया था। यह आ. जिनकुशलसूरिजी, पू. हीरविजयसूरिजी, विजयसेनसूरिजी का विचरण क्षेत्र रहा है। मंदिर में मूलनायक सुविधिनाथ भगवान हैं। 'वैशाख संवत शुक्ल तृतीया आ. जिनकुशलसूरिजी, श्रीलाभपुर... मंत्री कर्मचंद्रकारीतेति, श्री' यह उल्लेख है। यहाँ म्युजीयम में कईं भगवान की प्रतिमाजी हैं। गुजरानवाला समाधि मंदिर से आ. आत्मारामजी म.सा. के चरण लाकर यहाँ रखे गए थे। रावलपिंडी से हस्तलिखित ज्ञान भंडार वहाँ के शेठ मानसिंग भोजराजजी द्वारा लिखवाई गई 14000 प्रतियाँ व लोंकागच्छीय यतियों की मिलाकर 27000 हस्तप्रतें लाहोर के पुरातत्त्व विभाग में सुरक्षित हैं। लाहोर पुरातत्त्व विभाग म्युजीयम के पास 3 हजार जैन प्रभुजी के अवशेष हैं। जैनों के 500 घर (1932 में) हैं।

16. **भेरा –** भावड़ों के मोहल्ले में 300 जैनों के घरों के बीच में चंद्र प्रभु स्वामी का मन्दिर है। यहाँ 30 पाषाण के प्रभुजी और 158 धातु के प्रतिमाजी हैं। यहाँ महावीर स्वामी की जीवंत प्रतिमाजी थी ऐसा प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख मिलता है। हेमचद्रंसूरिजी की प्रेरणा से खनन करवाकर निकाली और कुमारपाल राजा ने पाटण में यह मूर्ति बिराजमान की थी। संशोधन का विषय है यह..।[1]

17. **रामनगर –** यहाँ भी पार्श्वनाथ प्रभु का विशाल मंदिर है। मंदिर पर सं. 1588 का उल्लेख है। पू. बुटेरायजी म. ने यहाँ मुहपत्ति का डोरा तोड़ा था। जैनों के 10 घर (1932 में)थे। धर्मशाला व ज्ञानमंदिर है।

18. **खान का डोगरा –** यहाँ शान्तिनाथ प्रभुजी का प्राचीन मंदिर है। प्रभुजी की प्रतिमा पर 1857 का उल्लेख मिलता है। यहाँ बनारसीदासजी का घर है जिनके पास पन्ने की प्रभु प्रतिमाजी है, विश्व में इतनी बड़ी प्रतिमाजी इस रत्न की कहीं भी नहीं है। जैनों के 100 घर (1932 में) थे। 2 उपाश्रय हैं।

---

1. वित्तभयपुरपट्टन

19. **सियालकोट –** 1662 में ऋषि गंगु ने यहाँ वैराग्य शतक की प्रतिलिपि की थी, यहाँ साधु–यतियों का विहार बहुत होता था और हजारों यतियों की प्रतिलिपी भी बनती थी। 1709 में हंससागर गणिने सियालकोट मंडन पार्श्वनाथ छंद बनाया था, यहाँ पार्श्वनाथ प्रभु का मंदिर है। यहाँ लाला लधेशाह के मकान में नेमिनाथ प्रभु की प्रतिमाजी है। जिस पर 1280 का लेख है। यहाँ महोम्मद नजर करके व्यक्ति है जिसने हमें यहाँ के फोटो भेजे थे। जैनों के 50 घर थे (1932 में)।

20. **हेदराबाद –** हेदराबाद में प. पू. आचार्य रत्नसागरजी म.सा. की प्रेरणा से नरशी नाथा का बनवाया मंदिर है। मंदिर में अजितनाथ भगवान मूलनायक हैं। जैनों के 300 घर (1932 में) थे। गाँव बाहर दादावाड़ी है जहाँ वैरोट्यादेवी प्रत्यक्ष है। आज भी यहाँ हिन्दू लोग वैरोट्यादेवी की पूजा करते हैं। दादावाडी में विशाल उपाश्रय व घर मंदिर है। यहाँ के फोटो विशाल मैरोरी द्वारा प्राप्त हुए हैं।

21 **गोडी थार –** गोड़ीजी पार्श्वनाथ प्रभु का उद्गम स्थल है। गोड़ी पार्श्वनाथजी का भव्य 52 जिनालय आज भी जीर्ण–शीर्ण अवस्था में खड़ा है। जैनों के कोई घर नहीं है। 3 प्राचीन शिलालेख मिले हैं।[1]

22. **नगर पारकर (सिंध) –** यहाँ कल्याण पार्श्वनाथ भगवान का धाबाबंदी मंदिर है। कल्याण पार्श्वनाथ भगवान पर आ. विद्यामंडन सूरिजी का लेख है। धातु के 35 प्रतिमाजी हैं, 3 घर जैनों के (1932में) थे।

23. **थरपारकर (सिंध) –** यहाँ आदेश्वर भगवान की 91 इंच की भव्य काउसग्गीय की प्रतिमाजी है। मंदिर के पीछे एक कमरे में करीब 50 भगवान बिराजमान है। अंजन के कोई उल्लेख नहीं हैं। शायद कहीं से लाई हुई प्रतिमाजी है।

24. **जोहर (सिंध) –** यहाँ जैनों के 35 घर (1932 में) थे। यति की पोशाल भी है। यहाँ संभवनाथ प्रभुजी का मंदिर है। मंदिर के पास दादावाड़ी है। जहाँ पू. देवसूरिजी म. के चरण हैं।

25. **विरवाह (सिंध) –** जहाँ मन्दिर में भगवान के रत्नमय प्रतिमाजी है। निले वर्ण

1. मूलनायक गोड़ी पार्श्वनाथ वर्तमान में वाव (गुजरात) में बिराजीत है। मुंबई में भी गोड़ी पार्श्वनाथ है।

के सुन्दर प्रभुजी बिराजमान हैं। प्रभुजी पर भट्टारकाचार्य जिनचंद्रसूरिभिः यह लेख है। जैनों के 7 घर (1932 में) हैं। 1 धर्मशाला भी है।[1]

26. **जोडेसर (सिंध) –** यहाँ यतियों की पोशाल में पंचधातु के शांतिनाथजी बिराजमान है। दादावाड़ी में एक गवाक्ष में पंचधातु के शांतिनाथजी बिराजमान हैं, आ. जिनचंद्रसूरिजी का उल्लेख है। गाँव के बाहर समाधि है (यतियों की)

27. **नारोवाल (सिंध) –** यहाँ विशाल जिन मंदिर है। सुपार्श्वनाथ प्रभु संप्रति–कालिन है। 3 प्रतिमाजी और हैं । मंदिर में 1930 का लेख है। गाँव में जैनों के 300 घर हैं। मंदिर के शिखर पर सुवर्ण कलश हैं।

28. **मीरपुर (सिंध) –** भीरपुर में जैनों के 7 मंदिर हैं। जैनों के 800 घर (1932 में) थे। मूलनायक चिंतामणी पार्श्वनाथ हैं। यहाँ भैरुजी का अत्यंत चमत्कारिक स्थान है। आ. लक्ष्मीसागर सूरिजी म. की समाधि यहाँ है तथा समाधि के पास पद्मावती देवी की खड़ी प्रतिमाजी है। यहाँ भीड़भंजन पार्श्वनाथ के मंदिर में 1 सुवर्ण की व 4 चांदी की प्रतिमा है। नगर में 129 पाषाण की व 81 धातु की प्रतिमाजी हैं।

29. **पठानकोट –** पठानकोट में श्री अरनाथ भगवान का जिन मंदिर है। इस प्रभुजी पर संवत् 1515 आ. सोमसुन्दर सूरिजी का लेख है। यहाँ पाषाण की 2 व धातु की 1 प्रभु प्रतिमाजी हैं।

30. **लाकरणा –** यहाँ विमलनाथ भगवान की 61 इंच की प्रतिमा है। दिगंबर श्वेतांबर साथ पूजा करते हैं। गांव में जैनों के करीब 30 घर (1932में) हैं।

31. **सुक्कर लाइन्स –** श्री शीतलनाथ स्वामी का घर मंदिर है। गाँव में जैनों के 3 घर हैं (1932में) एक ज्ञानभंडार भी है, 3 गौशालाएं व कुछ दूरी पर दादावाड़ी है जहाँ चरण पादुका हैं। यहाँ चरण पादुका पर आ. शांतिसागरजी का लेख है।

32. **नवाबशाह –** यहाँ पूर्व में मंदिर या उसके ध्वंश अवशेष देखे जा सकते हैं। दादागुरु के चरण हैं, लेकिन लेख में आ. यशोभद्रसूरि लिखा हुआ है।

33. **भागलपुर –** यहाँ लाला मोहनदास की हवेली में घर मंदिर है, जिसमें 3 प्रभुजी हैं। (खंभात के तारामंडल रत्न के प्रभुजी हैं।)

---

1. यहाँ के कुछ प्रतिमाजी गुजरात के वाव नगर में बिराजमान है।

34. **फैसलबंद –** यहाँ दादावाड़ी है जिसमें दादागुरु के 3 चरण व यतियों के चरण हैं। जैनों की बड़ी रियासत है। जैनों के 70 घर (1932 में) हैं।

35. **रोहतास –** यहाँ कई जैन ओसवालों के कुलदेवता का स्थान मौजूद है। आजादी के बाद वहाँ हिन्दु पूजा करते हैं।

36. **कसूर –** यहाँ आदिनाथ प्रभुजी का जिनमंदिर व उपाश्रय है। यहाँ जैनों के 75 घर हैं (1932 में)। गाँव के बाहर धर्मशाला है धर्मशाला के चौक में भेरुजी की छत्री है। (यहाँ की जानकारी श्रीमंद मैशेरी ने दी है।)

37. **पापनाखा –** यहाँ सुविधिनाथ भगवान का मंदिर है। मंदिर में 40 भव्य प्रभुजी मौजुद हैं यहाँ जैनों के 110 घर हैं (1932 में)। यहाँ इस क्षेत्र में एक ही माणिभद्रवीर की प्रतिमाजी मौजूद है।

38. **सनखतरा –** यहाँ श्री सुमतिनाथ प्रभुजी का भव्य समवसरण मंदिर है। धातु की 300 प्रतिमाजी मौजूद हैं। बड़ी पोशाल है जो लग्नगृह बन चुका है। यहाँ जैनों के 30 घऱ हैं (1932 में)। यहाँ गाँव के बाहर तलाब के किनारे पू. संपतविजयजी के चरण चिन्ह हैं।

39. **जेहलम सीटी –** यहाँ सीमंधर स्वामि का भव्य मंदिर है। मंदिर में 2 पाषाण के व 1 धातु के प्रतिमाजी हैं। जैनों के 10 घर हैं (1932 में)। यहाँ नदी के तट पर 3 चरण हैं, थोड़ी दूर एक चरण हैं। गाँव के मंदिर में भी एक चरण यहाँ से लाए गए हैं। यह प्रतित होता है कि आ. श्री ने पाँच पीरों को यहाँ प्रतिबोध दिया था। हो सकता है कि पाँच पीरों को प्रतिबोधित करने की जगह पाँच चरण की स्थापना हुई हो। दादावाड़ी के सामने ही मस्जिद है जहाँ पाँच पीर हैं ऐसा कहा जाता है।

40. **गुजरानवाला –** यहाँ नगर में 2 जिन मंदिर है। मूलनाायक श्री आदिनाथ भगवान हैं। पू. आत्मारामजी म. की समाधि भूमि भी है। समाधि भूमि के पास आत्मानंद गुरुकुल है। यहाँ घर मंदिर भी है। पू. आत्मारामजी म. के कालधर्म स्थल आ. कमलसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित चरण लाहौर म्युझीयम में हैं। वहाँ निर्मित सुवर्ण छत्री भी है। आज यह स्थान पुलिस स्टेशन बन चुका है। विरान उज्जड़ धर्मशाला आदि देखे जा सकते हैं। जैनों के 100 घर हैं (1932 में)।

41. **रावलपिंडी –** रावलपिंडी में श्री धर्मनाथ प्रभु का छोटा सा जिनमंदिर है। यहाँ

जैनों के 30 घर हैं (1932 में) मंदिर में भगवान के ऊपर चांदी की छत्री है। यहाँ विशाल ज्ञानभंडार था जो आज लाहोर म्युजियम में सुरक्षित हैं। ज्ञानभंडार का निर्माण कच्छ मांडवी निवासी शेठ मानसिंग भोजराज द्वारा हुआ था।

42. **कतासराज –** कतासराज हिन्दुओं का पवित्र तीर्थधाम है। मंदिरों की शृंखला में बीच में 22, 23, 26 नंबर के मंदिर जैन मंदिर के हैं। सभी मंदिरों में प्रभु प्रतिमाएँ हैं। सामने विशाल सरोवर है, सरोवर के तट पर कुछ चरण है। लोग ब्रह्माजी कहते हैं, परंतु वास्तव में चरण पर खरतरगच्छीय यतिओं का नाम है। यहाँ लोग पितृतर्पण के लिए आते हैं।

43. **काश्मीर** (जो पाकिस्तान के हस्तगत है) – **शारदा शक्तिपीठ,** यहाँ शारदा शक्तिपीठ है, जहाँ आ. हेमचंद्र सूरिजी से लेकर पू. यशोविजयजी ने साधना की थी। आज जीर्णशीर्ण अवशेष देखने को मिल रहे हैं। यहाँ मिली जैन प्रतिमाएँ 1941 में श्रीनगर म्युझीयम में रखी गई थीं। प्रतिमाओं पर लंछन भी देख सकते हैं। किन्तु वहाँ बौद्ध प्रतिमाजी का उल्लेख है। पार्श्वनाथजी को स्नेक बुद्धा बनाया है। यहाँ सुन्दर मौसम रहता है। सच में जगह को भी माता का वरदान है। पृथ्वी पर स्वर्ग है।

44. **पेशावर –** यहाँ 3 जैन मंदिर थे। 1919 में इन मंदिरों को विसर्जित करके 1 मंदिर बनाया गया था। यहाँ से कई भगवान लुधियाणा, जेसलमेर, नलीया (कच्छ) ले जाए गए थे। जैनों के 35 घर हैं (1932 में)।

45. **हींगलाज माता (बलुचीस्तान) –** यहाँ पर्वत पर कईं प्रतिमाएँ देखी जा सकती हैं। यह हिंगलाज माता का मूल स्थान है व ओसवालों में मैशेरी जाति की कुलदेवी हैं। अंबिका देवी के प्रतिबोध से हींगुल राक्षस हींगलाज माता बना ऐसा उल्लेख मिलता है। यहाँ के फोटो राहुलकुमार राठी के प्रयत्न से मिले हैं। माताजी की मुखमुद्रा अत्यंत मनमोहक है।

लाहोर में अनारकली के जैन मंदिर के पास आज भी जैन मंदिर बस स्टोप है। यहाँ 2 में से 1 जैन मंदिर 1993 बाबरी मस्जीद ध्वंस के समय तोड़ा गया था.... उसके बाद खुद यहाँ के मुसलमानों ने लिखा है की हमें लगा की यह हिन्दु मंदिर है इसलिए तोड़ दिया। हमें पता नहीं था की यह जैन मंदिर है। जैन तो यहाँ की शांतिप्रिय प्रजा थी। पहले यहाँ जो जो भावड़े रहते थे वह व्यापार करते थे व उनसे हमारे बहुत अच्छे संबंध थे। आज लाहोर में जैनों की वस्ति होने की संभावना है।

मैशेरी लोग अपने को बनीए, वाणईया लिखते हैं।[1] मेरा अनुमान है कि वे सब जैन हैं। उनकी कुलदेवी ओसीया माता है। आज भी वे सब ओसिया माता के परमभक्त हैं।

इसके अलावा बाबा सीबी. कोलंबा, पसनी, ससगोधा, झोब, चेमल, मुझफ्फराबाद, गीलगीट में भी यतिओं के चैत्य के लेख मैने यतिओं से टब्बे में देखे हैं। किन्तु इन मंदिरों की विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो पाई। हमारा प्रयास इन मंदिरों की योग्य जानकारी लाना है।

पाकिस्तान-अफगानिस्तान सीमा पर कई पर्वत पर गुफाएँ हैं। यह गुफाएँ पूर्व में विद्याधर यतिओं की साधना भूमि मानी जाती थी। इसी पर्वतों की शृंखला में कई जैन गुफाएँ हैं, जहाँ आज भी जिन प्रतिमाजी देखे जा सकते हैं। यहाँ कई औषधियाँ भी मिलती है। इसके कई फोटो आदि यहाँ हमने दिए हैं।

तारातंबोल नगरी – मेरे अनुमान से इसी क्षेत्र में तारातंबोल नगरी है। यहाँ कई जगह ऐसी है जो आज भी गुप्त है। कई शीला व चट्टानों के अंदर कुछ है ऐसा पुरातत्त्वविद का कहना है । कई पर्वत के पीछे कुछ होने की आशंकाएँ हैं। रूपनगर-दिल्ली व आत्मानंद सभाओं के भंडार से प्राप्त पत्रों को अगर ध्यान से पढ़ा जाए तो यह बात आपकी नजर में आएगी। कंधहार पूर्व में गंधार था, आज भी तारातंबोल रियासत यहाँ मौजुद है, जैन धर्म के हजारों अवशेष इस क्षेत्र में मिलते हैं। तालीबानों ने कई जैन प्रतिमाओं का नाश कर डाला। इतिहासकारों ने इन प्रतिमाओं को बौद्ध बताया है। वह उनकी जैन धर्म के प्रति अज्ञानता है। यहाँ से मिली कई मूर्तियाँ व हस्तप्रतें आज लंडन म्युझीयम में स्थानांतरित है।

---

1. कच्छी दशा ओसवाल समाज में भी कई लोग मैशेरी गोत्र के हैं।

पूरा जैन समाज अपनी धरोहर को संभालने के लिए एक जूट होकर पाकिस्तान की व अफगानिस्तान की सरकार को प्रेरित करें... हजारों इमेल हम भेजें... विदेशों में पर्यटन करने जाने वाले वहाँ भी जाएँ । आज पाकिस्तान का पर्यटन आगे बढ़ रहा है।

मोहन जोदडो व हरप्पा (हरप्पन संस्कृति का केन्द्र) - जैन शास्त्रों में उल्लेख मिलता है कि परमात्मा महावीर की गोशीर्ष चंदन की जीवंत प्रतिमाजी थी। वह प्रतिमाजी चंडप्रघोत वीतभयपुरपत्तन नगर ले जाने लगा किन्तु प्रतिमाजी चली नहीं तब शासनदेव ने उसको कहा की प्रतिमाजी वहाँ न ले जावे। उस नगर का नाश होना है। संभवतः मोहन-जोदड़ो वीतभयपुरत्तन है। कई जैन धर्म के अवशेष यहाँ से मिल रहे हैं। जैसे फणा युक्त पार्श्वनाथजी (जिसे पुरातत्त्वविदोने नाग बुद्ध कहा है) प्रभुजी के वर्षीदान के वरघोड़े का पट्ट भी मिला है साथ नेमिनाथ प्रभु की जान का दृश्य भी मिला है। ऐसी हजारों चिजें मिली हैं जो म्युजियम में सुरक्षित रखी गई है।

हम यह पक्का कह सकते हैं कि ये पूर्व में जैन नगरी थी। यहाँ से मिली जैन प्रतिमाएँ इसका प्रमाण है। पाकिस्तान व अफगानिस्तान जैन शासन का महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। आज भी अवशेष देखे जा सकते हैं। इसी बात से फलित होता है कि हमने क्या-क्या खोया है, कितना कुछ खोया है। हमारे पास अब बहुत कम बचा है।

वर्तमान व आनेवाला कल क्या होगा?

वर्तमान में सभी जिनमन्दिर जीर्ण अवस्था धारण कर चुके हैं। पाकिस्तान का पुरातत्त्व विभाग मंदिरों की देखभाल करता है। कई मंदिरों में खुले आम शादी आदि हो रहे हैं। कई मंदिर स्थानीय हिन्दु समाज के आधिन है। आज दिगम्बर जैन समाज ने अपने मंदिर को बचाने लाहोर के हाइकोर्ट में पीटीशन की है.... अपनी ओर से महेन्द्रजी मस्त (पंचकुला-चंडीगढ़) की ओर से भी प्रयत्न हुए हैं। वर्तमान में कई लोग डेलीगेशन बनाकर वहाँ दर्शन आदि करने भी गए हैं। खरतरगच्छ के श्रावक वर्ग देराउर से मिट्टी तक ला चुके हैं, जो जयपुर स्थित है।[1] पंजाब से भी एक डेलीगेशन पाकिस्तान गया था तो मुंबई के जैन झवेरी भाई जा चुके हैं। वहाँ जाना आज के समय में आसान है। लोग अच्छे हो चुके हैं। हमें दर्शन आदि के लिए

1. देराऊर दादावाड़ी- जयपुर

सहाय भी करते हैं। वहाँ के कतासराज आदि कई जिन मंदिरों का जीर्णोद्धार सरकार करवा रही है। 1947 में आजादी के समय कई मूर्तियाँ भारत आ चुकी हैं। जो थोड़ी बहुत है वे लाहोर म्युझीयम में स्थित हैं। आज के समय में अब तक 34 जैन प्रभु प्रतिमाएँ वापस आ चुकी हैं। हस्तप्रतों के भंडार को वापस लाने का अभियान चालू है। चाहे कोपी भी मिल जाए, वहाँ के जैनों का अभी तक कोई पक्का कोन्टेक्ट नहीं हो पाया है। लेकिन बात पक्की है कि आज भी वहाँ जैनों के घर विद्यमान है।

हरप्पा संस्कृति (मोहन जो दड़ो) पाकिस्तान

मोहन-जो-दड़ो का अर्थ है मृतकों का टीला। पुरातात्विक महत्त्व का यह स्थान पाकिस्तान के लरकाना जिले (सिंध) में स्थित हैं। इसके उत्खनन का कार्य 1922-27 ई. के मध्य सरकार के पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग ने सम्पन्न किया था। खुदाई में जो सीले प्राप्त हुई हैं उनमें जैन संस्कृति की प्राचीनता संदिग्ध और स्पष्ट बनती है। प्राप्त तथ्यों तथा निष्कर्षों का भारत के प्राचीन इतिहास की धारणा पर भी अचूक प्रभाव पड़ा है। अब तक ऋग्वेद को ही भारतीय संस्कृति सभ्यता का अन्तिम बिन्दु माना जाता था, किन्तु सिन्धुघाटी की संस्कृति से संबन्धित छानबीन से हमारा ध्यान प्राग्वैदिक भारत की ओर भी गया है। यह प्रश्न सहज ही उठता है कि सिन्धु घाटी के निवासी कौन थे। उनकी धार्मिक आस्थाएँ क्या थीं। क्या मोहन-जो-दड़ो के तत्कालीन सांस्कृतिक उनके कारण ऋग्वेद का भारतीय संस्कृति का प्रथम छोर मानना अब भी संभव है? क्या आरण्यक संस्कृति को एक सिरा मान लेने पर दूसरा सिरा सिन्धुघाटी तक विस्तृत नहीं हो जाएगा। तथ्यों की इस समीक्षा से यह सिद्ध होता है कि जैन धर्म प्राग्वैदिक है और भारत में योग-परम्परा का प्रवर्तक है।

अब तक यह माना जाता रहा है कि हमारे देश की प्राचीनता ऋग्वेद से पीछे संभवतः लोट नहीं सकती, किन्तु जो सबूत मोहन-जो-दड़ो के उत्खनन में मिले हैं, उनसे यह प्रभावित हो गया है कि भारत की संस्कृति काफी प्राचीन है, अतः प्राचीनता के इस तथ्य को खुदाई से मिले तथ्यों के समानान्तर परम्पराओं में भी ढूंढा जाना चाहिये। प्रस्तुत पुस्तक में इस दिशा में एक ठोस प्रयास किया गया है। मोहन जो-दड़ो से जो एक सील मिली है उससे जैन संस्कृति के सम्बन्ध में कई धूमिलताएँ स्पष्ट हुई है और इस नये उजाले में हम कई ऐतिहासिक गुत्थियों को खोल सकते हैं। अब तक कहा जाता रहा है कि जैन धर्म वेदों के समय प्रवर्तित या पुनर्जीवित हुआ, किन्तु मोहन-जो-दड़ो की खुदाई ने यह सिद्ध कर चकित किया है कि जैन संस्कृति पुरातथ्यों की कसोटी पर कम से कम 500 वर्ष (3250 ई. पू.) पुरानी तो है ही। मोहन-जो-दड़ो की सीलों पर योगियों की जो काउसग्ग (कायोत्सर्ग) मुद्राएँ अंकित हैं उनसे उक्त स्थापना और दृढ हुई है। मोहन-जो-दड़ो के उत्खनन से जो निष्कर्ष सामने आये हैं वे इस प्रकार हैं।

1. जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ अध्यात्म (आत्मविद्या) के आदि-

प्रवर्तक हैं। यह तथ्य मोहन–जोदड़ो की सीलों से प्रस्तावित होता है।

2. योग विद्या का प्रवर्तन क्षत्रियों ने किया। ब्राह्मणों ने इसे उन्हीं से सिखा ।

3. मोहन–जो–दड़ो की संस्कृति में महायोगी ऋषभनाथ की बहुत प्रतिष्ठा थी, यही कारण है कि सीलो पर यहाँ एक ओर उनकी कायोत्सर्ग मग्न मुद्रा मिलती है, वही उनका लांछन बैल भी अपने समानुपातिक सौंदर्य में यत्र–तत्र दिखायी देता है।

4. खुदाई में जो सीले मिली हैं उनसे योग–परम्परा के और अधिक प्राचीन होने की संभावना पुष्ट होती है। **इनसे हम इस निष्कर्ष पर भी पहुँचते हैं कि उस युग में जैन मूर्ति शिल्प का भी काफी विकास हो चुका था।** जैन मुनियों की कैसी मुद्रा हो, उनके चतुर्दिक कैसा वातावरण अंकित किया जाए, ऐसे कौन से प्रतीक हो सकते हैं जिन्हें चित्रित करने से उनकी गरिमा का बोध हो, इत्यादि पर भी काफी गंभीरता से विचार हुआ था। वृषभ, सिंह, महिष, गज, गेंडा आदि प्राणिओं की शरीर–रचना का भी अध्ययन उस समय के कला शिल्पियों को था। सीलों में जो संयोजन (कम्पोजिशन) है, वह सामान्य नहीं है, अपितु एक दीर्घकालिन परम्परा का द्योतक है। यदि हमारे पुरातत्त्वविद इन सीलों की गहन समीक्षा करते हैं, तो जैन शिल्प के इतिहास प्रागैतिहास में एक नया अध्याय खोला जा सकता है।

5. निर्विवाद है कि मोहन–जो–दड़ो की संस्कृति में प्राग्वैदिक संस्कृति के ऐसे अवशेष मिले हैं, जिनसे जैनों की प्राचीनता पुष्ट होती है। श्री रामप्रसाद चन्दा तथा श्री ऐरावत महादेवन, ने तथ्यों की समीक्षा की है उसमें यह स्पष्ट हो गया है कि सिन्धुघाटी संस्कृति में जैनों को एक विशिष्ट सामाजिक दर्जा प्राप्त था और उन्हें घाटी से संबंध राष्ट्रकुल (कोमनवेल्थ) में एक सुप्रतिष्ठित स्थान मिला हुआ था। उनकी वित्तीय शाखा थी तथा व्यापार–जगत् में उन्हें बहुत सम्मान के साथ देखा जाता था।

6. प्रस्तुत पुस्तक में हम जिस सील की विवेचना करने जा रहे हैं, यह उत्खन्न के तथ्यों पर आधारित तो है ही, साथ ही जैनवाङ्मय में प्राप्त परम्परा से भी समर्पित है। जब इतिहास को लोकश्रुति और परम्परा का बल मिल जाता है, तब वह इतना असंदिग्ध और अकाट्य हो जाता है कि फिर उसकी अस्वीकृति लगभग असंभव ही होती है। **इतिहास विवरणों से बनता है, लोकश्रुतियाँ लोकमानस में पकती हैं और परम्पराएँ साहित्य और भाषा के तल से प्रकट होती**

है। आचार्य जिनसेन के आदिपुराण में जो श्लोक उपलब्ध है उसमें यह तथ्य बहुत स्पष्ट हो जाता है कि मोहन-जो-दड़ो की पूरी पट्टी पर क्रियाकाण्ड की अपेक्षा अध्यात्म की संस्कृति अधिक प्रभावी थी। सीलों में जो प्रतीक मिलते हैं उनसे भी तत्कालीन लोकमानस, लोकाभिरुचियों का अनुमान लगता है। त्रिशूल, वृषभ, छह अराओं वाला कालचक्र, कल्पवृक्ष, वेष्टित कायोत्सर्ग प्रतिमाएँ इत्यादि भी महत्त्वपूर्ण है।

7. श्री महादेवन् ने यह साफ-साफ माना है कि मोहन-जो-दड़ो के सांस्कृतिक विघटन के समय जैनों का जो व्यापारिक विस्तार था उससे भी जैन संस्कृति का एक स्पष्ट परिदृश्य हमारे सामने आता है। उनका कथन है कि उस समय जैन व्यापारियों का मोहन-जो-दड़ो के राष्ट्रकुल में एक प्रतिष्ठित स्थान था। और उनकी शाखा दूर-दूर तक थी। इनकी एक स्वतन्त्र लिपि थी। कुछ कूट-चिह्न भी थे। जो सीले मोहन-जो-दड़ो में मिली हैं, संभव है उनमें से बहुतेरी जैन व्यापारियों से संबद्ध हो-महादेवन् की इस बात पर भी विचार किया जाना चाहिये।

8. यह स्थापना भी काफी सार्थक दिखायी देती है कि मोहन-जो-दड़ो की संस्कृति से जैन अध्यात्म और दर्शन संबद्ध रहे हैं, तथा उस समय भी सम्पूर्ण देश के व्यापार की बागडोर जैनों के हाथ में थी। जैनों का व्यापार तन्त्र, शैली और प्रशासन बिलकुल जूदा था।

आश्चर्य तो यह है कि जैनधर्म की प्राचीनता के जो संकेत आज से लगभग 150 वर्ष पूर्व मिले थे, उन पर आगे कोई काम नहीं हुआ। यह सूत्र-वह कदम जहाँ का तहाँ, ज्यों का त्यों उठा रह गया। श्री रामप्रसाद नंदा का लेख मोर्डन रिव्यू के अगस्त, 1632 के अंक में प्रकाशित हुआ था तथा श्री महादेवन् के शोध-निष्कर्ष पर श्री एस. वी. राय की समीक्षा संडे स्टेंर्डड के 16 अगस्त 1676 के अंक में प्रकाशित हुई थी। दोनों में मोहन-जो-दडो में जैन पुरातत्त्वविद ने इस स्थापना को आगे नहीं बढाया, पल्लवित नहीं किया। ऐसे समय जब कि मोहन-जो-दड़ो लिपि को पढ़ने (डिसाइफर करने) के कई सार्थक प्रयत्न हो चूके हैं, जैन **इतिहासवेत्ता-पुरात्तत्वविद यदि उन सारे स्रोत्रों का दोहन नहीं करते, जो जैन संस्कृति को विश्व की प्राचीनतम संस्कृति सिद्ध कर सकते हैं, तो यह हमारा दुर्भाग्य ही है।** हमारी राय में मोहन-जो-दड़ो संस्कृति में अध्यात्म और योग, शिल्प और व्यापार का जो रूप उपलब्ध है उस पर गंभीरतापूर्वक विचार किया

जाना चाहिये। उन सारी उत्पत्तियों का भी सावधानीपूर्वक परीक्षण होना चाहिये जो जैन योग की परम्परा को सुसमृद्ध ठहराती है।

प्रयत्न किया जाना चाहिये कि जैन ग्रंथों में जहाँ भी इस परम्परा की अभिव्यक्ति हुई है, उसे वहाँ से उठाकर सबके सामने रखा जाय। जैनों का लोक संस्कृति के विकास में जो प्रदान है, उसकी भी पूर्वग्रहमुक्त विवृति होनी चाहिये। प्रश्न शायद यह नहीं है कि मोहन-जो-दड़ो की प्राचीन संस्कृति को किस आस्था या विश्वास, धर्म या दर्शन से जोड़ा जाए बल्कि इस तथ्य को कसौटी पर कसा जाना चाहिये कि मोहन-जो-दड़ो के उत्खनन में जो सामग्री प्राप्त हुई है, उसका जैन वाङ्मय में कहाँ-कैसा उल्लेख हुआ है और उसका जैन इतिहास से क्या सम्बन्ध है। हमारी राय में प्राप्त तथ्यों की इन कसौटियों पर अवश्य देखा जाना चाहिये-

1. भगवान् ऋषभनाथ के पर्याय शब्द मिलते हैं वे कितने हैं और उनका मोहन-जो-दड़ो की संस्कृति से क्या तालमेल है। प्रजापति, पशुपतिनाथ, ब्रह्म, ब्रह्मा अथवा अथर्वन्, ब्राह्मी, वृषभ आदि शब्द क्या जैन संस्कृति से किसी तरह संबंधित हैं? यदि इनका कोई सम्बन्ध है तो वह क्या है? और समय ने उसे इस तरह धुंधला क्यों कर दिया है? क्या हम इस धुन्ध को हटा सकते हैं?
2. योग की जो परम्परा आज उपलब्ध है, उसका जैन-योग से कितना संबंध है? क्या योगियों की जो पर्यंक-कायोत्सर्ग मुद्राएं मोहन-जो-दड़ो की सीलों पर अंकित है, उनका विवरण जैन ग्रंथों में कहीं हुआ है? अर्धोन्मीलित नेत्र तथा नासिकाग्र दृष्टि से भी तथ्यों की विवेचना की जानी चाहिये।
3. कायोत्सर्ग (काउस्सग्ग) जैनों का अपना पारिभाषिक शब्द है। यह जिस ध्यानमुद्रा का प्रतीक है, वह जैन मुनियों की विशिष्ट तपोमुद्रा है। इस दृष्टि से भी तथ्यों की छानबीन की जानी चाहिये।
4. जैन प्रतिमा-विज्ञान (आइकोनोग्राफी) की दृष्टि से भी मोहन जो-दड़ो की प्रतिमाकृतियों का विश्लेषण किया जाना चाहिये। देखा जाना चाहिये कि क्या परम्परा से चली आ रही जैन प्रतिमाओं में और मोहन-जो-दड़ो की सीलों पर अंकित उत्कीर्णित प्रतिमाकृतियों में कोई संगति है? क्या

दोनों की शरीर-रचना (अनाटासी) समान है। भुजाओं का प्रलम्बन, एड़ियों का सटा होना, दोनों अंगुठों के बीच का अंतर, नासिकाग्र दृष्टि, अधखुली आँखे, केशविन्यास आदि कई ऐसे मुद्दे हैं, जिन्हें गंभीरता से तुलनात्मक तल पर देखा जाना चाहिये।

5. मोहन-जो-दड़ो जब उन्नति के चरम शिखर पर था, तब जैनों का व्यापार काफी दूर तक विस्तृत था। उनकी पहचान मुद्राएँ-हुंडियाँ (बिल ऑफ एक्सचैंज) प्रचलित थी। क्या इन हुंडियों का, जो आज भी प्रचलन में है, तब कोई अर्थ था? क्या हम इस तरह की हुंडियों की खोजबीन नहीं कर सकते हैं? संभव है इनका कोई भाग, कोई रूप हमें मिल जाए। मोडी लिपि के विश्लेषण से भी कोई कुंजी हमें मिल सकती है।

6. कहा जाता है कि जो लिपि मोहन-जो-दड़ो की खुदाई में प्राप्त बर्तनों और सीलों में कहीं-कहीं प्रयुक्त हुई है, वह ब्राह्मी का ही कोई रूप है। ब्राह्मी ऋषभनाथ की पुत्री थी, जिसे उन्होने लिपि-ज्ञान कराया था। क्या हम इस संभावना पर कोई विचार नहीं करना चाहेंगे।

7. अर्थवेद शब्द भरत के पर्याय शब्द के रूप में प्रयुक्त हुआ है, क्या इसे लेकर हम कोई विवेचना करना चाहेंगे। मोहन-जो-दड़ो की संस्कृति पर अर्थवेद का प्रभाव माना जाता है, हम देखें कि क्या शब्द साम्य में गहरे कहीं कोई सांस्कृतिक साम्य पांव दबाये बैठा है।

यह उपयुक्त समय है जबकि हमें उक्त सारे तथ्यों की समीक्षा के पटल पर लेना चाहिये और मोहन-जो-दड़ो की खुदाई में प्राप्त सम्पूर्ण सामग्री का पुरातत्त्व, इतिहास, परम्परा, लिपि, भाषा आदि की दृष्टि से सावधान विश्लेषण-अनुसंधान-अध्ययन करना चाहिये।

हरप्पन संस्कृति में जैन परम्परा

मूर्ति जैनों के लिए साधना - आराधना का आलम्बन है। वह साध्य नहीं है, साधन है। उस में स्थापना निक्षेप से भगवान् की परिकल्पना की जाती है। शिल्पी भी वही करता है। मोहन-जो-दड़ो में जो सीलें (मुद्राएँ) मिली हैं, वे भी साधन है, साध्य नहीं है, मार्ग है, गन्तव्य नहीं है, किन्तु शिल्प और कला, वास्तु और स्थापत्य के माध्यम इतने सशक्त है कि उनके द्वारा परम्परा और इतिहास की प्रेरक, पवित्र और कालातीत बनाया जा सकता है।

जैन स्वाध्याय और मूर्ति-शिल्प का मुख्य प्रयोजन आत्मा की विशुद्धि को प्रकट करना और आत्मोत्थान के लिए एक व्यावहारिक सुमधुर भूमिका तैयार करना है, इसलिए सौदर्य, मनोज्ञता, प्रफुल्लता, स्थितप्रज्ञता, एकाग्रता, आराधना, पूजा आदि के इस माध्यम को हम जितना भी यथार्थमूलक तथा भव्य बना सकते हैं, बनाने का प्रयत्न करते हैं। इसमें भगवान् भला कहा हैं? कैसे हो सकते हैं? फिर भी हैं और हम उन्हें पा सकते हैं ! मूर्ति की भव्यता इसमें है कि वह स्वयं साधक में उपस्थित हो और साधक की सार्थकता इसमें है कि वह मूर्ति में समुपस्थित हो। इन दोनों की तादात्म्य में ही साधना की सफलता है।

हरप्पा से प्राप्त सीलों (मुद्राओं) की सबसे बड़ी विशेषता है कला की दृष्टि से उनका उत्कृष्ट होना। शरीर गठन और कला-संयोजन की सूक्ष्मताओं और सौन्दर्य की संतुलित-आनुपातिक अभिव्यक्ति ने इन सीलों को एक विशेष कला-सम्पूर्णता प्रदान की है। बहुत सारे विषयों का एक साथ सफलतापूर्वक संयोजन इन सीलों की विशेषता है।

उक्त दृष्टि से भारत सरकार केन्द्रीय पुरातात्त्विक संग्रहालय में सुरक्षित सील क्र. 620-1928-29 समीक्ष्य है। इसमें जैन विषय और पुरातत्व को एक रूपक के मध्य में इस खूबी के साथ अंकित - समायोजन किया गया है कि वह जैन पुरातत्त्व और इतिहास का एक प्रतिनिधि बन गये हैं। न केवल पुरातात्त्विक अपितु इतिहास और परम्परा की दृष्टि से भी इस सील (मुद्रा) का अपना महत्त्व है।

इसमें दायीं ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में भगवान् ऋषभदेव हैं, जिनके शिरोभाग पर एक रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र) का प्रतीक है/निकट ही नतशीश है उनके ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती भरत, जो उष्णीग धारण किये हुए राजसी ठाठ में है। वे भगवान् के चरणों में अंजलिबद्ध भक्तिपूर्वक नतमस्तक है। उनके

पीछे वृषभ (बैल) है, जो ऋषभनाथ का चिन्ह (पहचान) है। अधोभाग में सात प्रधान सामात्य है, जो तत्कालीन राजसी गणवेश में प्रदानुक्रम से पंक्तिबद्ध है।

चक्रवर्ती भरत सोच रहे हैं- ऋषभनाथ का अध्यात्म-वैभव और मैरा पार्थिव वैभव। कहाँ है दोनों में कोई साम्य? वे ऐसी ऊँचाइयों पर हैं जहाँ तक मुक्त अंकिचन की कोई पहुँच नहीं है। भरत की यह निष्काम भक्ति उन्हें कमल-दल पर पड़े औस-बिन्दु की भांति निर्लिप्त बनाये हुए है। वे आकिंचन्य-बोधि से धन्य हो उठे हैं।

सर्वार्थसिद्ध1-1 में कहा है- मूर्तमित्र मोक्षमार्गवाग्विसर्ग वपुषा निरुपयन्तम् (वे निःशब्द ही अपनी देहाकृति मात्र से मोक्षमार्ग का निरुपण करने वाले हैं)। शब्द जहाँ घुटने टेक देता है, **मूर्ति वहाँ सफल संवाद बनाती है। मूर्ति भक्ति का भाषातीत माध्यम है। उसे अपनी इस सहज प्रक्रिया में किसी शब्द की आवश्यकता नहीं है। उसकी अपनी वर्णमाला है, इसीलिए मिट्टी, पाषाण आदि को आत्मसंस्कृति का प्रतीक माना गया है।**

कौन नहीं जानता कि मूर्ति पाषाण आदि में नहीं होती, वह होती है वस्तुतः मूर्तिकार की चेतना में पूर्वस्थित, जिसे कलाकार क्रमशः उत्किर्ण करता है अर्थात् वह काष्ट आदि के माध्यम से आत्माभिव्यजन या आत्मप्रतिबिम्बन करता है। पाषाण जड़ है, किन्तु उसमें जो रूपायित या मूर्तित है वह महत्त्वपूर्ण है। मूर्ति में सम्प्रेषण की अपरिमित उर्जा है। यही उर्जा या क्षमता साधक को परम भगवत्त-परमात्मत्व से जोड़ती है। अर्थात् साधक इसके माध्यम से मूर्तिमान तक अपनी पहुंच बनाता है।

शिल्पशास्त्र प्रथमानुयोग का विषय है। विशुद्ध आत्मबोध से पूर्व हम इसी माध्यम की स्वीकृति पर विवश है। आगम क्या है। आगम माध्यम है सम्यक्त्व तक पहुँचने का। आगम केवली के बोधिदर्पण का प्रतिबिम्ब है, जिसका अनुगमन हम श्रद्धा-भक्ति द्वारा कर सकते हैं। आगम शब्द की व्यत्पति है- 'आगमयति हिताहित बोधयति इति आगम' (जो हित-अहित का बोध कराता है, वे आगम हैं) तीर्थंकर की दिव्यवाणी को इसीलिए आगम कहा गया है।

कहा जा सकता है कि अध्यात्म से पुरातत्व-मूर्तिशिल्प आदि की प्राचीनता का क्या सम्बन्ध है। इस सिलसिले में हम कहेंगे कि शिल्पकला आदि के माध्यम से आगम बोधगम्य बनता है और हम बड़ी आसानी से उस कंटकाकीर्ण मार्ग पर

पग रखने में समर्थ होते हैं।

जैन धर्म की प्राचीनता निर्विवाद है। प्राचीनता के इस तथ्य को हम दो साधनों से जानते हैं–पुरातत्त्व और इतिहास। जैन पुरातत्त्व का प्रथम सिरा कहाँ है? यह तय करना कठिन है, क्योंकि मोहन–जो–दड़ो की खुदाई में ऐसी कुछ सामग्री मिली है, जिसने जैनधर्म की प्राचीनता को आज से कम–से–कम 5000 वर्ष आगे धकेल दिया है। सिन्धुघाटी से प्राप्त मुद्राओं के अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि कायोत्सर्ग मुद्रा जैनों की अपनी लाक्षणिकता है। प्राप्त मुद्राओं की तीन विशेषताएँ हैं– कायोत्सर्ग मुद्रा ध्यानावस्था और मुनि अवस्था।

मोहन–जो–दड़ो की सीलों पर योगियों की जो कायोत्सर्ग मुद्रा अंकित है उसके साथ वृषभ भी है। वृषभ ऋषभनाथ का चिह्न (लांछन) है। पद्मचंद्र कोश में ऋषभ का व्युत्पत्तिक अर्थ दिया है– संपूर्ण विद्याओं के पार जाने वाला एक मुनि। हिन्दु पूराणों में जो वर्णन मिलता है उसमें ऋषभ और भरत दोनों के विपुल उल्लेख है। **पहले माना जाता रहा है कि दुष्यन्तपुत्र भरत के नाम से ही इस देश का नाम भारत हुआ, किन्तु अब यह निर्णय हो गया है कि भारत ऋषभ–पुत्र भरत के नाम पर ही भारत कहलाया।** इसका पूर्वनाम अजनाभ वर्ष था। नाभि (अजनाभ) ऋषभ के पिता थे। उन्हीं के नाम पर यह अजनाभ वर्ष कहलाया। वर्ष का अर्थ है देश, तदनुसार भारतवर्ष का अर्थ हुआ, भारत देश। मोहन–जो–दड़ो की संकेतित सील में भरत चक्रवर्ती की मूर्ति भी उकेरी गयी है। हमें सारे पुरातथ्यों की वस्तुनिष्ठ समीक्षा की जानी चाहिए।

सील को जब हम तफसील वार या विस्तार में देखते हैं तब इसमें हमें सात दृश्य दिखायी देते हैं– (1) ऋषभदेव–कायोत्सर्गरत योगी। 2) प्रणाम की मुद्रा में नतशीश भरत चक्रवर्ती। 3) रत्नत्रय। 4) कल्पवृक्ष पुष्पावलि। 5) मृदु लता। 6) वृषभ (बैल)। 7) पंक्तिबद्ध चरणवेशधारी सात प्रधान आमात्य।

निश्चय ही इस तरह की संरचना का आधार पीछे से चली आती कोई सुदृढ़ सांस्कृतिक परम्परा ही हो सकती है। प्रचलित लोक परम्परा के प्रभाव में मात्र जैनमार्ग के अनुसार इस तरह की परिकल्पना संभव नहीं है।

इतिहास में ही हम अपने प्राचीन धरोहर को प्रामाणिक रूप में सुरक्षित पाते हैं। इतिहास, एतिह्य, और आम्नाय समानार्थक शब्द हैं। इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार इसका वाचर्यार्थ है इति ह आसीत् (निश्चय से एसा ही हुआ था तथा

परम्परा से ऐसा ही है)। **इतिहास असल में दीपक है। जिस तरह एक दीपक से हम वस्तु के यथार्थ रूप को देख पाते हैं ठीक वैसे ही इतिहास से हमे पुरातथ्यों की निरभ्रान्ति सूचना मिलती है।**

परम्परा और इतिहास में किंचित् अन्तर है। इतिहास स्थूल- ठोस तथा तथ्यों पर आधारित होता है। जबकि परम्परा लोकमानस में उभरती और आकार ग्रहण करती है। एक पीढ़ी जिन आस्थाओं, स्वीकृतियों और प्रवचनों को आगामी पीढ़ी को सोंपती है, परंपरा उनसे बनती है। परम्पराओं का कोई सन्-संवत् नहीं होता। वैसे इस शब्द के कईं अर्थ हैं। एक अर्थ पुरासामग्री भी है। परम्परा अर्थात् एक सुदीर्घ अतीत जो अविच्छिन्न चला आ रहा है वह। योगियों की भी एक अविच्छिन्न अटूट परम्परा रही है। योग-विद्या क्षत्रियों की अपनी मौलिकता है, क्षत्रियों ने ही उसे द्विजों को हस्तान्तरित किया । ऐसा लगता है कि सिन्धुघाटी के उत्खनन में प्राप्त सिलें एक सुदीर्घ परम्परा की प्रतिनिधि है। वे आकस्मिक नहीं है, अपितु एक स्थापित सत्य को प्रकट करती है।

भारतीय इतिहास, संस्कृति और साहित्य ने इस तथ्य को पुष्ट किया है कि सिन्धुघाटी की सभ्यता जैन सभ्यता थी। सिन्धुघाटी के संस्कार जैन संस्कार थे। इससे यह उत्पत्ति बनती है कि सिन्धुघाटी में प्राप्त योगमूर्ति, ऋग्वैदिक वर्णन तथा भगवान, विष्णु आदि पुराणों में ऋषभनाथ की कथा आदि इस तथ्य के साक्ष्य हैं कि जैनधर्म प्राग्वैदिक ही नहीं वरन् सिन्धुघाटी सभ्यता से भी अधिक प्राचीन है।

श्री नीलकंठ दास साहु के शब्दों में : जैनधर्म संसार का मूल अध्यात्म धर्म है। इस देश में वैदिक धर्म के आने से बहुत पहले से ही यहाँ जैनधर्म प्रचलित था। संभव है कि प्राग्वैदिकों में या द्रविड़ों में यह धर्म था।

कुछ ऐसे शब्द हैं, जो जैन परम्परा में रूढ़ बन गये हैं, डॉ. मंगलदेव शास्त्री का कथन है कि वातरशन शब्द जैन मुनि के अर्थ में रूढ़ हो गया था। उनकी मान्यता है कि श्रमण शब्द की भाँति ही वातरशन शब्द मुनि-संप्रदाय के लिए प्रयुक्त था। मुनि परम्परा के प्राग्वैदिक होने में दो मत नहीं है।

जैनों का इतिहास बहुत प्राचीन है। भगवान् महावीर से पूर्व तेईस और जैन तीर्थंकर हुए हैं, जिनमें सर्व प्रथम है ऋषभनाथ-सर्वप्रथम होने के कारण ही उन्हें आदिनाथ भी कहा जाता है। जैन कला में उनकी जो मुद्रा अंकित है वह एक गहन तपश्चर्यात् महायोगी की है। भागवत् में ऋषभनाथ का विस्तृत जीवन-वर्णन है।

ऋषभनृप दीर्घकाल तक शासन करते रहे। उन्होंने उन कठिन दिनों में जनता को सुरक्षित किया और उनकी बाधाओं, व्यवधानों और दुविधाओं का अन्त किया। अन्त में आत्म शुद्धि के निमित्त उन्होंने अमरत्व ग्रहण कर लिया और दुर्धर तपश्चर्या में निमग्न हो गये। स्वयं द्वारा स्थापित परम्पराओं और प्रवर्तनों के अनुसार उन्होंने ज्येष्ठ पुत्र भरत को अपना संपूर्ण राजपाट सोंपा और परिग्रह ज्ञाता-दृष्टा बने। उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियों को जीत लिया, अतः वे जिन कहलाये। जिन की व्युत्पत्ति है- 'जयति इति जिनः' (जो स्वयं को जीतता है, वह जिन है)।

कैवल्य प्राप्ति के बाद उन्होंने जनता को अध्यात्म का उपदेश दिया और बताया कि आत्मोपलब्धि के उपाय क्या है? चूंकि उनका उपनाम जिन था अतः उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म जैनधर्म कहलाया। इस तरह जैनधर्म विश्व का सर्वप्रथम धर्म बना।

भगवान् ऋषभनाथ का वर्णन वेदों में नाना संयमों में मिलता है। कई मंत्रों में उनका नाम आया है। मोहन-जो-दड़ो (सिन्धुघाटी) में पाँच हजार वर्ष पूर्व के जो पुरावशेष मिले हैं उनसे भी यही सिद्ध होता है कि उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म हजारों साल पुराना है। मिट्टी की जो सीलें वहाँ मिली हैं, उनमें ऋषभनाथ की योगि मुर्ति है। उन्हें कायोत्सर्ग मुद्रा में उकेरा गया है। उनकी इस खडगासन मुद्रा के साथ उनका चिन्ह बैल भी किसी-न-किसी रूप में अंकित हुआ है। इन सारे तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि जैनों का अस्तित्व मोहन-जो-दड़ो की सभ्यता से अधिक प्राचीन है।

श्री रामप्रसाद चन्द्रा ने अगस्त 1932 के मार्डनरिव्यु में कायोत्सर्ग मुद्रा के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है (देखिये इसी पुस्तिका का अन्तिम आवरण-पृष्ठ)। उन्होंने इस मुद्रा को जैनों की विशिष्ट ध्यान-मुद्रा कहा है और माना है कि जैनधर्म प्राग्वैदिक है, उसका सिन्धुघाटी की सभ्यता पर व्यापक प्रभाव था।

मोहन-जो-दड़ो की खुदाई में उपलब्ध मृण्मुद्राओ (सीलों) में योगियों की जो ध्यानस्थ मुद्राएँ हैं, वे जैनधर्म की प्राचीनता को सिद्ध करती है। वैदिक युग में आत्यों और अमरणों की परम्परा का होना भी जैनों के प्राग्वैदिक होने को प्रमाणित करता है। व्रात्य का अर्थ महाव्रती है। इस शब्द का वाच्यार्थ है- वह व्यक्ति जिसने स्वेच्छा पुष्टि हुई है कि ऋषभ-प्रवर्तित परम्परा, जो आगे चल कर शिव में जा मिली, वेदनिर्चित होने के साथ ही वेदपूर्व भी है। जिस तरह मोहन-जो-दड़ो में

प्राप्त सीलों की कार्योत्सर्ग मुद्रा आकस्मिक नहीं है, उसी तरह वेद-वर्णित ऋषभ नाम भी आकस्मिक नहीं है, वह भी एक सुदीर्घ परम्परा का द्योतक है, विकास है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में जिन अतीन्द्रियदर्शी वातरशन मुनियों की चर्चा है, वे जैन मुनि ही हैं।

श्री रामप्रसाद चन्द्रा ने अपने लेख में जिस सील का वर्णन दिया है, उसमें अंकित-उत्कीर्णित ऋषभ-मूर्ति को ऋषभ-मूर्तियों का पुरखा कहा जा सकता है। ध्यानस्थ ऋषभनाथ, त्रिशूल, कल्पवृक्ष-पुष्पावलि, वृषभ, मृदुलता, भरत और सात मंत्री आदि महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं। जैन वाङ्मय से इन तथ्यों की पुष्टि होती है। इतिहासवेत्ता श्री राधाकुमुद मुखर्जी ने भी इस तथ्य को माना है। मथुरा-संग्रहालय में भी ऋषभ की इसी तरह की मूर्ति सुरक्षित है। श्री पी.सी. राय ने माना है कि मगध में पाषाणयुग के बाद कृषियुग का प्रवर्तन ऋषभयुग में हुआ।

श्री चंद्रा ने जिस सील का विस्तृत विवरण दिया है, वह परम्परा जैन साहित्य में आश्चर्यजनक रूप से सुरक्षित है। आचार्य वीरसेन द्वारा रचित धवला, प. पू. विमलसूरि द्वारा रचित प्राकृत ग्रंथ पउमचरियं एवं जिनसेनकृत आदिपुराण की कारिक्राओं -गाथाओं में जो वर्णन मिलते हैं उनमें तथा उक्त सील में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव देखा जा सकता है। इन वर्णनों के समांतर अध्ययन से पता चलता है कि इस तरह की कोई मुद्रा अवश्य ही व्यापक प्रचलन में रही होगीं, क्योंकि मोहन-जो-दड़ो की सील में अंकित आकृतियों तथा जैन साहित्य में उपलब्ध वर्णनों का यह साम्य आकस्मिक नहीं हो सकता। निश्चय ही यह एक अविच्छन्न परम्परा की ठोस परिणति है। यदि हम पूर्वोक्त ग्रंथों के विवरणों को सील के विवरणों से समन्वित करें तो सम्पूर्ण स्थिति की स्पष्ट व्याख्या इस प्रकार संभव है-

'पुरुदेव (ऋषभदेव) खड्गासन कायोत्सर्ग मुद्रा में अवस्थित हैं उनके शीर्षोपरी भाग पर रत्नत्रय अभिमण्डित है। यह रत्नत्रय की शिल्पाकृति है। कोमल देशना के प्रतीक रूप एक लता-पर्ण मुखमण्डल के पास सुशोभित है। दो ऊर्ध्वग कल्पवृक्ष-शाखाएँ हैं, पष्प-फलयुक्त, महायोगी उससे परिवेष्टित है। यह भक्ति-प्राप्य फल की द्योतक है। चक्रवर्ती भरत भगवान् के चरणों में अंजलि बद्ध प्रणाम-मुद्रा में नतशीश हैं। भरत के पीछे वृषभ हैं, जो भगवान् ऋषभनाथ का चिन्ह (लांछन) है। अद्योभाग में है अपने राजकीय गणवेश में सात मंत्री जिनके पदनाम हैं- माण्डलिक राजा, ग्रामाधिपति, जनपद अधिकारी, दुर्गाधिकारी (गृह मंत्री),

भण्डारी (कृषिवित्त मंत्री) षडंग बलाधिकारी (रक्षा मंत्री), मित्र (परराष्ट्र मंत्री)'

मोहन-जो-दड़ो की मुद्राओं में उत्कीर्णित इन तथ्यों का स्थूल भाष्य संभव नहीं है, क्योंकि परम्पराओं और लोकानुभावों को छोड़कर होगी और न ही वैज्ञानिक। जब तक हम इस तथ्य को ठीक से आत्मसात नहीं करेंगे कि मोहन-जो-दड़ो की सभ्यता पर योगियों की आत्मविद्या की स्पष्ट प्रतिछाया है, तब तक इन तथ्यों के साथ न्याय कर पाना संभव नहीं होगा, अतः इतिहासविदों और पुरातत्त्ववेत्ताओं को काम करना चाहिये कि वें प्राप्त तथ्यों को परवर्ती साहित्य की छाया में देखें-खोजें और तब कोई निष्कर्ष लें। वास्तव में इसी तरह के तुलनात्मक और व्यापक, वस्तुनिष्ठ और गहन विश्लेषण से ही यह संभव हो पायेगा कि हमारे सामने कोई वस्तुस्थिति आये।

अब हम उन प्रतिकों की चर्चा करेंगे, जो मोहन-जो-दड़ो के अवशेषों में मिले हैं और जैन साहित्य में भी जिनका उपयोग हुआ है। यहाँ तक कि इनमें से कुछ प्रतीक तो आज तक जन जीवन में प्रतिष्ठित हैं।

सब में पहले हम स्वस्तिक को लेते हैं। सिन्धुघाटी से प्राप्त कुछ सीलों में स्वस्तिक (साँथिया) भी उपलब्ध है। इससे यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि सिन्धुघाटी के लोकजीवन में स्वस्तिक एक मांगलिक प्रतीक था। साँथिया आज भी जैनों में व्यापक रूप में पूज्य और प्रचलित है। इसे जैन ग्रंथों, जैन मंदिरों और जैन ध्वजाओं पर अंकित देखा जा सकता है। व्यापारियों में इसका व्यापक प्रचलन है। दीपावली पर जब नये खाते-बहियों का आरंभ किया जाता है, तब साथिया बनाया जाता है।

स्वस्तिक जैन जीव-सिद्धान्त का भी प्रतीक है। इसे चतुर्गति का सूचक माना गया है। जीव की चार गतियाँ वर्णित है : नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव। स्वस्तिक के शिरोभाग पर तीन बिन्दु रखे जाते हैं, जो रत्नत्रय के प्रतीक हैं। इन तीन बिन्दुओं के ऊपर एक चंद्र बिन्दु होता है जो क्रमशः लोकाग्र और निर्वाण का परिचायक है। स्वस्तिक का एक अर्थ कल्याण भी है।

रत्नत्रय दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रतीक है, जो सिन्धुघाटी की सीलों पर तो अंकित है ही, जैन ग्रंथों में भी जिसकी चर्चा मिलती है। लोकजीवन में कुछ शैव साधुओं द्वारा रखा जाता है। जैन परम्परा में त्रिशूल को रत्नत्रय का प्रतिनिधि माना गया है। त्रिरत्न है- सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। इसकी चर्चा धवला

आदिपुराण, शिल्प रत्नाकर आदि में मिलती है। त्रिशूल को जैनों का जैन अस्त्र कहा गया है।

तीसरा है कल्पवृक्ष। यह कायोत्सर्ग मुद्रा में खडी ऋषभमूर्ति के परिवेष्टन के रूप में उत्कीर्णित है। आदिपुराण, त्रिषष्टि, शील्परत्नाकर आदि में इसके विवरण मिलते हैं।

अर्हंद्दास ने मृदु लतालंकृत मुखंः कह कर मृदुलता-पल्लव का आधार उपलब्ध करा दिया है।

भरत चक्रवर्ती ऋद्धाभक्ति पूर्वक ऋषभमूर्ति के सम्मुख अंजलि बाँधे नमन-मुद्रा में उपस्थित हैं। आचार्य जिनसेन, पू. विमलसूरि, पू. हेमचंद्राचार्य आदि ने भरत की इस मुद्रा का तथा उनके द्वारा ऋषभार्चन का वर्णन किया है। तुलनात्मक अध्ययन और व्यापक अनुसंधान से हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मोहन-जो-दड़ो की सील पर जो रूपक अंकित है व जन-जीवन के लिए सुपरिचित, प्रोढ़, प्रचलित रूपक है अन्यथा वह वहाँ से धन कर कवि-परम्परा में इस तरह क्यों कर स्थापित होता।

एक तथ्य और ध्यान देने योग्य है कि ब्राह्मणों को अध्यात्म विद्या क्षत्रियों से पूर्व प्राप्त नहीं थी। उन्हें यह क्षत्रियों से मिली, जिसका वे ठीक से पल्लवन नहीं कर पाये। छान्दोग्य उपनिषद् में इसकी झलक मिलती है।

इससे पहले कि हम इस पुस्तक को समाप्त करें कुछ ऐसे तथ्यों को और जानें जिनका जैन धर्म और जैन समाज की मौलिकताओं से सम्बन्ध है।

जैन धर्म आत्मस्वातन्त्रयमूलक धर्म है। उसने न सिर्फ मनुष्य बल्कि प्राणिमात्र की स्वतंत्रता का प्रतिपादन किया है। जीव तो स्वाधीन है ही, यहाँ तक कि परमाणु-मात्र भी स्वाधीन है। कुल छः द्रव्य है प्रत्येक स्वाधीन है। कोई किसी पर निर्भर नहीं है। न कोई द्रव्य किसी की सत्ता में हस्तक्षेप करता है और न ही होने देता है। वस्तुतः चलता है। जैनों का कर्म सिद्धान्त भी इसी स्वातन्त्रय पर आधारित है। श्री जुगमन्दरलाल जैनी ने आत्मस्वातन्त्रय के इस सिद्धान्त को बहुत ही सरल शब्दों में विवेचित किया है।

इस भ्रम को भी हमें दूर कर लेना चाहिये कि जैन और बौद्ध धर्म समकालीन प्रवर्तन हैं। वास्तविकता यह है कि बौद्धधर्म का परवर्ती है। **स्वयं गौतम बुद्ध ने**

आरंभ में जैन धर्म को स्वीकार किया था, किन्तु वे उसकी कठोरताओं का पालन नहीं कर सके, अतः मध्यम मार्ग की ओर चले आये। इससे यह सिद्ध होता है कि बौद्ध धर्म भले ही वेदों के खिलाफ रहा हो, किन्तु जैनधर्म जो प्राग्वैदिक है, कभी किसी धर्म के विरुद्ध नहीं उठा या प्रवर्तित हुआ। उसका अपना स्वतंत्र विकास है। संपूर्ण जैन वाङ्गमय में कहीं किसी का विरोध नहीं है। जैन धर्म समन्वयमूलक धर्म है, विवादमूलक नहीं–उसके इस व्यक्तित्व से भी उसके प्राचीन होने का तथ्य पुष्ट होता है।

यहाँ श्री पी.आर. देशमुख के ग्रंथ इंडस सिविलाइजेशन एण्ड हिन्दु कल्चर के कुछ निष्कर्षों को भी चर्चा करेंगे। श्री देशमुख ने स्पष्ट शब्दों में कहा है, जैनों के पहले तीर्थंकर सिन्धु सभ्यता से ही थे। जैन लोगों ने इस सभ्यता–संस्कृति को बनाये रखा और तीर्थंकरों की पूजा की।

इसी तरह उन्होंने सिन्धुघाटी की भाषिक संरचना का भी उल्लेख किया है। लिखा है– सिन्धुजनों की भाषा प्राकृत थी। प्राकृत जन–समान्य की भाषा है। जैनों और हिन्दुओं में भारी भाषिक भेद है। **जैनों के समस्त महत्त्वपूर्ण प्राचीन धार्मिक ग्रंथ प्राकृत में है, विशेषतया अर्धमागधी में, जबकि हिन्दुओं के समस्त ग्रंथ संस्कृत में है। प्राकृत भाषा के प्रयोग से भी यह सिद्ध होता है कि जैन प्राग्वैदिक है और उनका सिन्धुघाटी सभ्यता से सम्बन्ध था।**

उनका यह भी निष्कर्ष है कि जैन कथा–साहित्य में वाणिज्यिक कथाएँ अधिक है। उनकी वहाँ भरमार है, जबकि हिन्दू ग्रंथों में इस तरह की कथाओं का अभाव है। सिन्धुघाटी की सभ्यता में एक वारिज्यिक कॉमनवेल्थ (राष्ट्रकुल) का अनुमान लगता है। तथ्यों के विशलेषण से पता लगता है कि जैनों का व्यापार समुद्र–पार तक फैला हुआ था। उनकी हुंडियाँ चलती–सिकरती थी। व्यापारिक दृष्टि से वे मोड़ी लिपि का उपयोग करते थे। यदि लिपि–बोध के बाद कुछ तथ्य सामने आये तो हम जान पायेंगे कि किस तरह जैनों ने पाँच सहस्त्र पूर्व एक सुविकसित व्यापार–तंत्र का विकास कर लिया था।

इन सारे तथ्यों से जैन धर्म की प्राचीनता प्रमाणित होती है। प्रस्तुत पुस्तिका मात्र एक आरंभ है, अभी इस संदर्भ में पर्याप्त अनुसंधान किया जाना चाहिये।

''मोहन–जो–दड़ो : कायोत्सर्ग मुद्रा में साधनारत महयोगी ऋषभनाथ''

सिन्धु घाटी की अनेक सीलों में उत्कीर्णित देवमूर्तियां न केवल बैठी हुई योगमुद्रा में है और सुदूर अतीत में सिन्धुघाटी में योग के प्रचलन की साक्षी है अपितु खड़ी हुई देवमूर्तियाँ भी हैं जो कायोत्सर्ग मुद्रा का वर्णन हुआ है।

जैन मथुरा में सुरक्षित एक प्रस्तर–पट्ट पर उत्कीर्णित चार मूर्तियों में से एक ऋषभ जिन की खड़ी हुई मूर्ति कायोत्सर्ग मुद्रा में है (इस लेख की आकृति)। यह ईसा की द्वितीय शताब्दी की है। मिश्र के आरम्भिक राजवर्षा के समय की शिल्प–कृतियों में भी दोनों और हाथ लटकाये खड़ी कुछ मूर्तिया प्राप्त है। यद्यपि इन प्राचीन मिली मूर्तियाँ या यूनान की पुरानी मूर्तियों की मूद्राएँ भी वैसी ही हैं, तथापि वह देहोत्सर्गजनित निःसंगता जो सिन्धुघाटी की सीलों पर अंकित मूर्तियों तथा कायोत्सर्ग ध्यानमूद्रा में लीन जिन–बिम्बों में पायी जाती है, इसमें अनुपस्थित है। वृषभ का अर्थ है बैल और यह बैल वृषभ या ऋषभ जिन का चिह्न (पहचान) है।

अतः अब इन तथ्यों को जानकर हम अपनी संस्कृति को संभालने का अधिक प्रयत्न करें यही शुभेच्छा... शुभकामना....

जैन शासन जयवंत हो.....

–भूषण शाह

(विजयसेन सूरि रास)

लाहौर में जैनाचार्य श्री विजयसेन सूरि की पधरामणी

जैनाचार्य श्री विजयसेनजी सूरि अकबर - बादशाह को प्रतिबोध देनेवाले श्री हीरविजयसूरिजी के पट्टधर थे।

आपका जन्म सं. 1604 में फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा को मरुदेशस्थ नाडोलाई (नारलाई) ग्राम में ओसवाल वंशीय वृद्धशाखीय कर्म्माशाह की धर्मपत्नी कोडांबाई की कोख से हुआ था। आपका मुख्य नाम जयसिंह था। जब आपकी आयु 7 वर्ष की हुई तब आपके पिताजी ने जैन श्वेतांबर तपागच्छ संघ के एक मुनि महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की। इस के 2 वर्ष पश्चात ही जयसिंह ने अपनी माताजी के साथ सं. 1613 की ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी के दिन सूरत में श्री विजयदानसूरिजी के पास दीक्षा ग्रहण की। विजयदानसूरिजी ने आपको श्री हीरविजयसूरिजी का शिष्य बनाया, दीक्षा के समय आपका नाम जयविमल रखा गया।

सं. 1626 में खंभात निवासी सुश्राविका श्रीमती पूनीबाई ने एक महोत्सव किया और आपको पंडित की पदवी दी। तत्पश्चात् सं. 1628 फाल्गुन सुदी 7 को आपको उपाध्याय का पद मिला और फिर अहमदाबाद में जब मूला शेठ और विया पारेख ने महोत्सव किया, आपको आचार्य-पदवी मिली और आपका नाम विजयसेनसूरि रखा गया। तदनन्तर सं. 1630 के पौष वदी 4 को पाटण में आपकी पाट स्थापना हुई थी। इस प्रकार श्री विजयसेनसूरि ने अपनी विद्वत्ता और प्रभाविकता का परिचय देकर ख्याति प्राप्त की।

अहमदाबाद का सूबा खान आपका अमृतमय उपदेश सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ और आपने योगशास्त्र के प्रथम श्लोक के 700 अर्थ किये, यह बात किसी से छिपी नहीं है। यही आपके बुद्धि-बल का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

जब आप राधनपुर शहर में विराजमान थे तब आपको अकबर बादशाह की तरफ से निमंत्रण दिया गया था। इसलिए आपने गुरु महाराज का आशीर्वाद लेकर लाहौर की तरफ विहार किया। मार्ग में आये हुए ग्रामों में उपदेश देते हुए आप लाहौर में पधारे, उस समय लोगों के झुंड के झुंड खानपुर तक आपके स्वागत के लिए आये थे। दिल्ली दरवाजे होकर आचार्य महाराज ने शहर में प्रवेश किया और काश्मीरी महल में उन्होंने श्रीनृपति अकबर से भेंट की। अपने उपदेश के प्रभाव से

उन्होंने बादशाह को बहुत प्रसन्न किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि गाय, बैल, भैंस इत्यादि किसी भी पशु का कोई वध न करने पाए और न कोई लावारिस की मिलकत को ग्रहण करे इस किस्म के कई फरमान जारी कर दिये गये और इतना ही नहीं बल्कि आपको 'सवाई हीरला' का विरुद् अर्थात् पद भी दिया।

लाहौर में आपके दो चातुर्मास हुए थे। फिर आपको श्रीहरिविजयसूरिजी की बीमारी का समाचार मिला, जिसके कारण आपको विहार करना पड़ा। लेकिन पाटण पहुँचते ही आपको यह समाचार मिला कि, ऊना नगर में श्री हरिविजय सूरिजी स्वर्गवासी हो गये। इससे आपको अपार शोक हुआ। आपने गुजरात, सोरठ, मारवाड़, मेवाड़ आदि देशों में विचरकर बहुत जीवों का उपकार करने के साथ-साथ आपने श्री सिद्धाचलजी, गिरनारजी, राणकपुर, शंखेश्वर आदि तीर्थों की यात्रा भी बहुत की थी। जब आपने श्री शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा की तब आपके साथ 350 साधुओं का समुदाय था। आपके हाथ से कावी, चंपानेर, अहमदाबाद, गंधार, खंभात, सागवाडा और पाटण आदि अनेक ग्राम व नगरों में अंजनशलाका हुई थी। लगभग चार लाख जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा आपके हाथों से हुई। आपके सदुपदेश से श्री तारंगाजी, शंखेश्वर, विमलाचल, पंचासर, राखपुर, आरासन, विद्यानगर आदि स्थानों में जीर्णोद्धार भी हुआ। आप पुर्तगंजों (यूरोप महाप्रदेश में पूर्तगाल एक देश है वहाँ के रहने वाले) के बुलाने से आप दिव बंदर पधारे। जामराज भी आपके उपदेश से प्रसन्न हुआ।

जैसे आप विद्वान थे वैसे ही शास्त्रार्थ करने में भी पूरे समर्थ थे। आपकी विद्वता और शास्त्रार्थ की प्रबल शक्ति का ही प्रभाव था कि अकबर बादशाह के समक्ष ब्राह्मण पंडितों को और सूरत में दिगम्बराचार्य को परास्त करके आपने विजय प्राप्त की।

आपके समुदाय में 8 उपाध्याय, 150 पंडित साधु और बहुत से सामान्य साधु महात्मा थे। सब मिलकर ये दो हजार साधुओं के अधिपति थे। आपकी त्याग वृत्ति भी प्रशंसनीय थी। प्रतिदिन पांच विगई का त्याग करते थे। श्री दशवैकालिक सूत्र का पाठ किये बिना आप आहार भी नहीं करते थे। जाप करने में आप बहुत परिश्रम उठाते थे। आपने श्री नवकार मंत्र का तीन कोटि जाप किया था। छट्ठ, अट्ठम आदि अनेक प्रकार की तपश्चर्या भी वे बहुत करते थे। अपनी सम्पूर्ण संयमावस्था में आपने 58 चातुर्मास किए थे।

68 वर्ष की आयु पूरी करके संवत् 1672 को खंभात के अकबरपुर में ज्येष्ठ वदी 11 के दिन आपका स्वर्गवास हुआ।

श्री विजयसेनसूरि का स्वर्ग गमन सुनते ही जहाँगीर बादशाह ने अहमदाबाद में तीन दिन तक बाजार-दूकानें बन्द रखवाई तथा आपका स्मारक अर्थात् समाधि बनवाई और दस बीघा जमीन समर्पित की।

श्री हेमविजयगणि कृत श्री विजयसेनसूरि स्तुति

अध्यससिभाल, कपोल विसाल,
वचनरसाल, जिसी सिलरी,
कूबरार की कंति, देह भलकांति,
दंत की ज्यू पंति, रतनजरी, ।।1।।
दिल भिंज्यु अपाह, तपागच्छ नाह,
सुकोमल बांह, भली अंगुरी,
कहई हेमविजय, विजय सेन गुरु,
मुख देखते दुर्गति दूर टरी ।।2।।
वर वेणु उपंग मृदंग ग्रहि,
गाउंति किंनर स्यु किंनरी,
गिरि पुंज निकुंज बन गहर,
कीतर ज्याकी सुरति करी। ।।3।।
मुनिराज अवाज दवाज सुनी,
सब भाग गये कुमति बथुरी,
भणि हेमविजय विजयसेन,
गच्छ पत्ति देखत अंखि अमीज्युं ठरी ।।4।।
गुरु कीरति फेनजिसी उजली।
गुरु मूरति सूरति कामित पूरति,
चूरति पाप सबइ मसली।
-------------- ।।5।।
गुरु वाणि बखानी बहु गुण खानि
सुनई जग जान बहुत मिली।
भणीई हेम विजय सेन मुनि,
शुक्र नाम ग्रहि रसना सफली ।।6।।
गगन मंडलि रहई अजब जबलगि,
सघल सकल सुख कारिणी ज्योति रवि चंदगी।
धरती घर शीतल गहन गिरि संकुलं,
जब लगि पीठ पर चंड भुदंगिद की।। ।।7।।

जब लगि चतुर चिहुंखंड चित चमकती,
राज की थिति सुरलोक सुर इंद की,
तब लगि हेम कहि हीरजी पट्ट प्रभु,
प्रगट पदवी विजयसेन सुरिंद की ।।8।।

सवालाख सो वीर सिंधु सरसा सोरठ सगा,
मरु, मालव, मेवाड़, मोट, मरहट्ट, मगहिभगा।
कामरूप, कालिंग, कीर, कुंतल, करण, कुंकण,
गूजर गड्ड गिरिंद गंध गंगातट गंजगा। ।।9।।
इति देश दसोदिसिं जय करी,
हेमविजय कवियन कही,
श्री विजयसेन सूरिंद की,
कीरति कमला गह गही ।।10।।

– लाहौर (लाभपुर) में रचित

इस व्रजभाषा में स्तुति रचने वाले श्री हेमविजयगणि वह हैं जो हीरविजय–सूरिजी के साथ अकबर बादशाह के पास फतहपुर सीकरी गये थे। ये बड़े अच्छे कवि थे, प्रसिद्ध कवि ऋषभदासजी ने भी इनकी प्रशंसा की है।

लाहौर में रचित विजयसेनसूरि रास

अधिक गुणवंत यशवंत महंत सुनी,
भेजी फरमान गुरुजी बोलए।
हीरविजयसूरि सब सूरि सिरताज,
निज पट्टधर प्रथम पूरव चलाए ।।1।।

आयो श्री विजयसेन निज सेन दल सज,
किये वादी आबाद तद मद विडार्यो।
सहि अकबर सबलदूनी अपनी देखते,
सबल जसवाद गपगच्छ धरायो ।।2।। आयो.

शहर लाहौर गुरुराज पावन कियो,
संघ जेसिंहजी दरीस पायो।
मान सन्मान देहि साहि अकबर सबल,
प्रबल तेज त्रिभुवन नमायो ।।3।। आयो.

धेनु धेनुपति महिषी महिषीपति,
बेंदि अभयदान फरमान लीनो।
मात कोडां कर्मासाह कुलचंदलो,
जास जसपडह तनी भुवन दीनो ।।4।। आयो.

बड़े बड़े खान और बड़े-बड़े उंबरे,
बड़े बड़े राउ और बड़ वजीरे।
देशना सरस जस तास सुनी गुणी अणी,
कीरति तीन जगत भक्त सजीरे ।।5।। आयो.

सरिसी, नलिनी यथा गगन,
दिन नायको, भरत भरतो यथा उदय वेतो।
सकल सूरि सूरोगुरु तथा प्रगटीयो,
हीर पाट्ट अधिक महिमावंतो ।।6।। आयो.

श्री हीर विजय सूरि कर लिखित वर लेखथी,
सूरि गुर्जर धरणि धीर आयो,
वाचकां मुकुट कल्याण विजयो जयो,
ससि धन धन्न जेणिं सूरि गायो ।।7।। आयो.

।। दूसरी ढाल।।

परम पट्टधर हीरनाजी, बीनतडी अवधार
नयरीत्रं बावती इयां अ, छाई जी अमरापुरी,
अनुकारी जसिह जी, आवो अणइ देश ।।1।।
पगि पगि नयरनि वेस जयसिंह जी वल्लभ तुम उपदेश
सुगुरुजी होसई लाभ असेस ।।2।।
जैसिंहजी पोढां मंदिर मालियाजी, ऊंचापोलि पगार
पणिज करई व्यपारियाजी, जहांनहीं चोर चखार- जे।।3।।
जिस प्रसाद सोहावणाजी, उत्तंग अति अभिराम,
धर्मशाला चिकारिणीजी, भवियत जन विश्राम - जे।।4।।
धनद सभा धनवंत वसई जी, ससनेहा बहुलोक,
धरि धरिनारि पदमिनीजी, मदमुदित सदागत शोक - जे।।5।।
जैन वचने रातडाजी, श्राविक समकित धार,
दान-मान गुणे आगलाजी, सुभिष जिहां सुविचार - जे।।6।।
रयणायर रयणो भयोजी जई गुहिर गंभीर
विविध क्रियाणां उतरईं जी अवहणा बहंई जसतीर -जे।।7।।
वाडि वणारुलिया मनाजी, पगिपगि निर्मलनीर,
दाखह मंडप छांहिया जी मधुर लबई पिक-कीर - जे।।8।।
चंदन चंपक केतकी जी मारगि शीत छांह - जे।।9।।
दुधइ पाई पखालसुंजी अरचुं सो वन फूल
चंदन छटा देवरावसुंजी पधरावुं पटकूल -जे।।10।।
कमला समरई कान्हनई जी- सीता समरई जी राम
दमयन्ती नलरायणईजी, तिम भवियण तुम नाम - जे।।11।।
नादंई सुरनर मोहियाजी, मानसरोवर हंस
जयसिंहजी जगमोहिउ जी, जिमिगोपी हरिवंश ।।12।।
मेहज सघलई, वरसणां जी, न जोई ठाम कुठाम।
सेलडी सिंचई सरभरंई जी, सांचई अस्क आराम ।।13।।
आक धंतुरा किम गमंईजी, जे अंबारस लीण।
फुनकर धालंई कंई रडईजी, चंदन दीठो जेण ।।14।।

जे अल जोमल वातणो जी, त्तेकिम टलंई संदेह।
जल पीजई सुपनां न रहईजी, त्रिसन धिपड़ तेन ।।15।।
तुम गुण संख्या न पामई जी, मुज मुखि रसना एक।
कागल मसि नहिं तेतलीजी, किमिलिखईं तुम लेख ।।16।।
भविक जोई तुम वाटडी जी, कीजई परउपकार।
जय जंपइ भयकारी जी, पधारो गणधार ।।17।।

।। तीसरी ढाल ।।

सुग्रीव नगर सोहमणउंजी।।
सरस्वति भगवति भारती जी, भगतिं धरी मनि माहिं।
पायनमी निज गुरु तणा जी युगास्युं तप गच्छराय।।
जयंकर जयसिंहजी गुरुराय।।
नामि नवनिधि पामंईजी, दर्शनि दारिद्र जाय जयंकर ।।1।।
साहसिक शिरि, शेखरूजी कविजन मन तरु कीर।
हीरविजयसूरि तणो जो पट्ट धुरंधर धीर-जयंकर ।।2।।
भरत भूमि भूषणामणो जी, विषय बड़ो मेवाड
नड्डुलाई नगरी भली जी, लोक करई लखलाड ।।3।।
साह कमा कुल कुलगीरीजी, कोडां मात मल्हार
जयसिंहजी जग मोहियोजी, जिमि गोपी भरतार ।।4।।
ब्रह्मा मुख अंबर थको जी, भूपति अंक बखान।
इणि बरसिं गुरुजी तणो जी, जन्म हुउ जाणि ।।5।।
फागण शुदि पूनम दिनई जी, दिन कर वारि उदार,
उदयसिंह राण तणाई जी, राजिजरायो गणधार ।।6।।
सात बरीसो सुनहुड जी, जब जयसिंह कुमार,
साह कमइ संयमलिकजी, छोडी नंदन नार ।।7।।
नव वरिसो जयसिंहजी, निज जननी नि साथ
परराायो संयम सुन्दरीजी विजयदान सूरि हाथ ।।8।।
संवत सोल तेरो तरई जी, चढिउ चारि तरंग,
सूरत बंदर मांहि हुआ जी, श्री जिन शासन जंग ।।9।।

ढाल ।।2।।

गुरुविण गछ नहि जिनकम्हऊ ।।ढाल।।

श्री विजय दानसूरि सिरि- जयविमलासिङ था थोरे,
हीर विजयसूरि दनिं चतुरचेलो एह आप्योर।
हीर पट्टधर जग जायो-जयसिंहजी गुरु जगजायो ।।10।।

हीर भटारिकहि अडलई-श्री जयविमल चेलो रे।
वियविद्या गुणे करी वस्यो-जाने महोन वेलो रे ।।11।।

अनुकर्मिं डीसइ पधारिया-हीर जोध्याई सुभ्पनों रे
श्री गुरु वचनते शिरधरी-जयसिंह करई वषाणो रे ।।12।।

प्रकटियो सुरभडई गुर सुणो, जेतुम जयसिंह चेलो रे।
ने हुस्पई त्रिण जग पावनो, जिस्यो हर शोखरा रेलो रे ।।13।।

इम सुणी गछधणी हिरपिउ, विहार पंभायतिं कीनो रे।
श्री जयविमल गणो सनई, पंडित पद तिहां दीनों रे ।।14।।

सोल छवीसइ, तिहां लिऊ, लाभ प्रतिष्ठा नो मोटो रे।
पत्रविका पूनी इंतिहां किउ, पद उत्सव नहीं खोटो रे ।।15।।

राज नगर गुरु आविआ, अनुक्रम हिर भूणइदो रे।
जय विमलादिके परचर्या, जिम तारागणो चंदो रे ।।16।।

तिण नगरी मांहि मूलगो, मूलो शेठ सुजानो रे।
पारिष वीपातणे घरे, मढिया सबल भंडानो रे ।।17।।

फागण सुदी तिथि सातमी ललित, लगन दिन लाधो रे।
शशधर मृगशिर स्यु मिल्योयोग, अमृत सिद्धि सीधो रे ।।18।।

सोल अठावी सई अभिनवई, हरषि हीरजी सूरि रे।
श्री विजयसेन सूरीश्वर पाटी, ठव्या नव नूरई रे ।।19।।

अचरज एह तिहां हुउ, जानो पंडित लोगो रे।
मूलो साह सूल नषित्र समो, श्री गुरुसूर संयोगो रे ।।20।।

पाटणि पूज्य पधारिआ, चऊमासुरह्या त्रसिंइ रे।
हीरजी जैसिहंजी दुई मिल्या, श्री संघनु मनही सही रे ।।21।।

पारणई पोस बहुल पषिं, चउथिं थावर वारई रे।
श्री विजयसेनसूरि पटिठव्या, वांधा हीर गणधारि रे ।।22।।

ढाल।।3।।

(चाल–त्रिभुवन पति जिन वीरनी, नमी गुरु गण)

हवि हीर आणाशिरधरी गुरु करई विहारी जी।
हारोजी भरत–भूमि भामिनी तेणोही ।।23।।

दिन 2 तपगच्छ वाधिऊ, जिम जल निधि पूरोजी।
पूरऊजी विजयसेन ससि उगतइजी ।।24।।

वादीमद गुरु गालिउ, श्री भूषण नामोजी
कामोजी, जिमहर नयन हुताश नंईजी ।।25।।

राधनपुरि, चऊमासि रह्या, दुइ गण घर तेलाजी
वेलाजी ए हवी पुरायईंपा भिंईजी ।।26।।

राजनगरि गुरु जयलहाउ, श्री तपगच्छ सो होजी
मोहोजी खान–खानो गुरु दर्शनईजी ।।27।।

तिहां अकबर गुरु तेडिया, हीर वंदी नई हाल्याजी
पाल्याजी पातक लाहौर लोकनाजी ।।28।।

अकबर साह जलालदी गुरु दर्शननिंह रख्योजी
तरस्योजी, जिम पंथी शीतल जलिंजी ।।29।।

वादी वाह हरा विउ किउ जिन शासन उजु आलोजी,
कालोजी वदन कुबादि तणो किऊजी ।।30।।

उतर दिशि आरो पिउ गुरु कीरतिं थमोजी।
कुंभोजी, करुणा रसनो नृप हुऊजी ।।31।।

डिल्ली पति दरवार चढ़ी गुरु गुण सुरवेलीजी
भूलीजी निम्भल कीरति फूलडेजी ।।32।।

साहि सीष लेई चालिआ गुरु हीर बोलयाजी
आयाजी अणहिल पुर ऊतावलाजी ।।33।।

हीर दिवंगततिहां सुराया सुणि सोक निवार्योजी
संभार्यउजी गौतम वीर विछोहिऊजी ।।34।।

ढाल ।।4।।

(चाल : पगिसुर गिरि आरोहणं।।)

तपगच्छभार भूजा बलिं धराते साहस धीर
हवई भट्टारक प्रगटेऊविजयसेन बड़ वीरो रे।। गुरु गुण सांभरई
हीरतणो पट धारोरे, नहिं मनिमैल लिगारेरि, किमहिन वीसरई ।।35।।

बिम्ब प्रतिष्ठा अति बड़ी, गुरु कीधी पंचास,
गुरु राजिंप्रभु प्रगटिऊ, विजय चिंतामणि पासो रे ।।36।।

गुरु उपदेश ईकधर्या जीर्ण विहार अपार
श्री विजयदेव सूरि सरिखा, दीख्या दिष्या उदारो रे ।।37।।

आठ वाचक पद थाप्या एक सो नई पंचास,
एतला पंडित पद दिया, पूरी तपगच्छ आसो रे ।।38।।

श्री शेत्रुंजय गुरु चढया साथइ निज पटधार
साढा त्रिनसई मुनि मिल्या हरष्या संघ अपारो रे ।।39।।

सोरठ श्री गुरु संचर्या हरिया च्यार चऊमास
श्री गिरनारि गिरिंदनो कीधी यात्रा उलासो रे ।।40।।

कपीतान काजी मिल्या, पादरी नई परिवार।
पूज्य फरंगी तेडिया पहुता दिव भफ्तरारे, एह अच्छेर अपारो रे ।।41।।

जांम नाम नृप हरखीऊ, देखी सुभुरु दीदार,
तिहांथी पूज्य पधारिया-संखेसर सुविहारो रे ।।42।।

राजनगर गुरु आविआ-दुई गणधर परिवार
बार वरसि विग्रह टल्यो-संधि हुऊ जयकारो रे ।।43।।

बरस सोल बहुत्तंरि खँभ नगर चौमास
करवा श्री अकबर पुरिं आव्या अति हि उलासो रे ।।44।।

जेठ बहुल एकादशी-प्रह ऊगमतई भांणा
चऊसरणादि समाधिस्युं गुरु होई निर्वानों रे ।।45।।

मखबल केरी मांडवी मांडी सतरई खंड
च्यालीस भण सूकडि मिलि त्रिण मण अगर अखंडो रे ।।46।।

अधण केसर तिहां मिल्युं, मिल्यो घणो घणसार
कस्तूरी चूरी घणो हो आदिक नो न पारो रे ।।47।।

दो हजार महमुं[1] दिई पूज्या पूज्य नवांग
इम गुरुणा निर्वाणनो, हुऊ उछाव चंगो रे ।।48।।

महमुंदी सघली मिली, आठ हजार प्रमाण,
खरची खंभायत तणई, संघई जाण सुजांणो रे ।।49।।

जग जाणि एकादशी, इक गुरु हीर जी लीघ।
बीजी गुरुजे संघजी, कीधी जगत प्रसिद्धो रे ।।50।।

सघला पंडित मांहि बडो, श्री कमल विजय गुरुसिंह।
तास शिष्य विद्या विजय, सुविहित पंडित लीहो रे ।।51।।

वीर हीर हुई दीपता, भेडता[2] नगर भंभ्कारि,
तास पसाई पांमी करी, गायो ए गण धारो रे ।।52।।

इम थुरायो गणधर साधुस्युं, धुर भुवन वंधुर गण धरो।
श्रीविजयसेन सुरिंद सुन्दर, सकल संघ सुहंकारो रे ।।53।।

तस पट्ट भूषण दलित भूषण, श्री विजयदेव दिवामणी,
गुण विजय पंडित इम पथपई, चिरतयो तपगच्छ धनी रे ।।54।।

---

1. मुद्रा 2. मेडता

आधार –

(1) श्री सिंध तीर्थ यात्रा संग्रह (1932 में प्रकाशित),

(2) श्री जैनतीर्थ सर्वसंग्रह (1920 में प्रकाशित, प्रकाशक–शेठ आणंदजी कल्याणजी की पेढ़ी),

(3) श्री विविध तीर्थ कल्प,

(4) श्री लाभपुर तीर्थ कल्प,

(5) श्वेतांबर जैन डिरेक्टरी,

(6) यतियों के टब्बे,

(7) हस्तप्रतियाँ,

(8) मेरी सिंध यात्रा (विद्याविजयजी),

(9) Jain relics outside India,

(10) epi graphic India,

(11) भारत बाहर के जैन पुरातत्त्व,

(12) मध्य एशिया और पंजाब में जैन धर्म,

(13) नवयुग निर्माता (पू. आत्मारामजी म. का स्मृति ग्रंथ,

(14) आ. विजयवल्लभ सूरिजी स्मृति ग्रंथ–आदर्श जीवन,

(15) जैनत्व जागरण,

(16) हरप्पन संस्कृति का आदर्श,

(17) विजयानंद मेगेझीन।

आभार : इकबाल तारीफ (लाहोर), महोम्मद रेहत (करांची), राहुल राठी (करांची), हमीद शेख (गुजरानवाला)।

फोटो– युनुस शरीफ, इकबाल तारीफ– पुरातत्त्व विभाग–लाहोर।

सिंध की जानकारी– विशाल मैशेरी (हैदराबाद–पाक)

पंजाब (पाकिस्तान) की जानकारी – श्रीमंत मैशेरी (सुक्कर लाईन्स)

प्राचीन प्रतिमा, बोडेसर

प्राचीन प्रतिमा, लाहोर म्यूझियम

प्राचीन प्रतिमा, लाहोर म्यूझियम

पू. वल्लभसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठीत
प्रतिमाजी वर्तमान में लाहोर म्यूझियम में

प्राचीन प्रतिमाएँ, लाहोर म्यूझियम

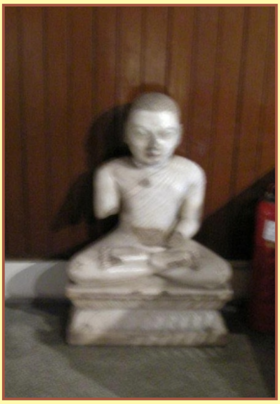

श्री गौतम स्वामी, लाहोर म्यूझियम

श्री शत्रुंजय पट, लाहोर म्यूझियम

जैन मंदिर स्वर्ण शिखर, नारोवाल

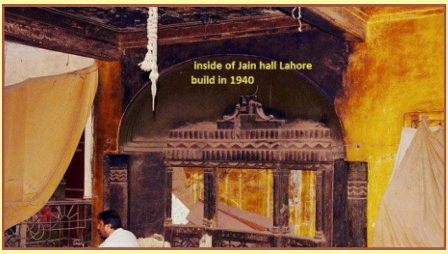

जैन उपाश्रय, लाहोर – जहाँ आझादी के समय
पू. वल्लभसूरिजी म.सा. चातुर्मासार्थ बिराजमान थे

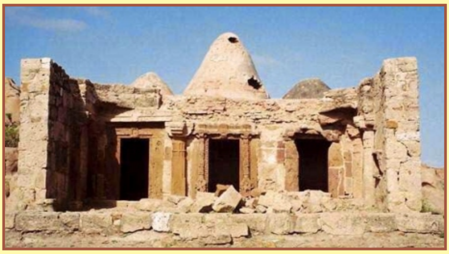

जैन मंदिर अवशेष, थरपारकर

जैन मंदिर, वीरवाह सिंध

जैन उपाश्रय, रावल पिंडी

जैन मंदिर, अनारकली, लाहोर

जैन मंदिर शिखर, देरा गाजीखान

श्री श्वे.जैन मंदिर, सियालकोट

प्राचीन जैन मंदिर, कसूर

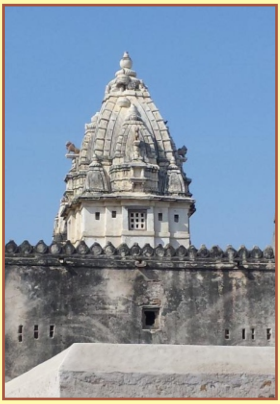

जैन मंदिर, नगरपारकर

जैन मंदिर का ढांचा, लाहोर संग्राहालय के बाहर

जैन स्थानक, लाहोर

श्री गोड़ी जी पार्श्वनाथ भगवान का मूल शिखर,
नगर पारकर, सिंध गोड़ी गांव

जैन मंदिर, नगर पारकर

जैन मंदिर, सिरकप (तक्षशीला)

श्री चिंतामणी पार्श्वनाथ मंदिर, रसोलनगर

पू. आत्मारामजी म.सा. का समाधि स्थल–गुजरांवाला

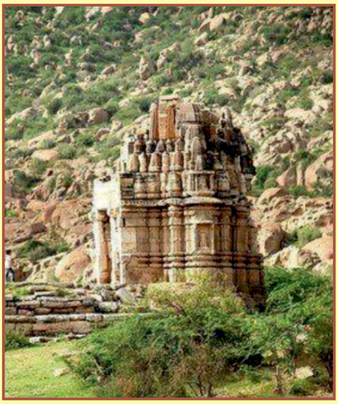
सिंध प्रांत में प्राचीन जैन मंदिर

स्वर्ण चित्रकारी से सजा जैन मंदिर, रसोल नगर

पू. जिनकुशलसूरि समाधि स्थल, देराउर

जैन बोर्डींग गृह मंदिर,गुजरांवाला

प्रतापी पूर्वज

गुजरांवाला – मांडवी(कच्छ) निवसी,
शेठ श्री मानसंग भोजराजजी द्वारा हुए सत्कार्य....

- ✻ गिरनार से गोड़ी थार(थरपारकर–सिंध, हाल पाकिस्तान) का भव्य संघ (वि.सं. 1902)
- ✻ देरानवाब (सिंध) में प्रतिष्ठा (प्रे.पू.आ.जिनरत्नसूरिजी म.सा.) (वि.सं. 1904)
- ✻ धराकी (सिंध) अंजन–प्रतिष्ठा (प्रे.पू.आ. जिनरत्नसूरिजी म.सा.) (वि.सं. 1904)
- ✻ गुजरांवाला (यति की बड़ी पोशाल) प्रतिष्ठा (प्रे.पू. जिनरत्नसूरिजी म.सा.) (वि.सं. 1906)
- ✻ कराची मंदिर का निर्माण तथा प्रतिष्ठा (प्रे.पू.आ. जिनरत्नसूरिजी म.सा.)(वि.सं.1907)
- ✻ क्वेटा मंदिर में प्रतिष्ठा (प्रे.पू.आ. जिनरत्नसूरिजी म.सा.) (वि.सं. 1909)
- ✻ गिरनार में जिनालय के गुप्तखंड में विशेष रत्नमंदिर का निर्माण (2020 में व्यवस्था के कारणवश यह मंदिर अन्यत्र शिफ्ट किया गया है) (वि.सं.1910)
- ✻ अजिमगंज में अंजनशलाका–प्रतिष्ठा (प्रे.पू.आ. जिनरत्नसूरिजी म.सा.) (वि.सं.1919)
- ✻ जगतशेठ परिवार की मैत्री से सम्मेदशिखर, राजगिर, चंपापुरी, मुर्शिदाबाद में प्रतिष्ठा का लाभ मिला (वि.सं. 1919)
- ✻ जेसलमेर में जिनबिंब की प्रतिष्ठा (प्रे.पू.आ. जिनरत्नसूरिजी म.सा.) (वि.सं. 1923)
- ✻ लाहोर और पठानकोट में प्रतिष्ठा (प्रे.पू.आ.जिनरत्नसूरिजी म.सा.) (वि.सं.1925)
- ✻ सिद्धाचल तीथ पर 11 जिनबिंबों की प्रतिष्ठा (वि.सं.1929)
- ✻ गुजरांवाला बड़ी पोशाल का निर्माण (वि.सं.1926) (जहाँ पू. आत्मारामजी म.सा का कालधर्म हुआ)
- ✻ रावलपिंडी में ज्ञानभंडार का निर्माण, पादुका की प्रतिष्ठा (प्रे.पू.आ.जिनरत्नसूरिजी म.सा.) (वि.सं.1926)
- ✻ 300 लहीआओ को रोजी देकर सुंदर साहित्य का लेखन, पू.आ. जिनरत्नसूरिजी म.सा. की प्रेरणा से करीब 14,000 प्रतें लिखवाई जो रावलपिंडी के ज्ञानमंदिर में रखी हुई थी। (अभी लाहोर के म्युझीयम में सभी प्रतें सुरक्षित हैं)

विक्रम संवत 1901 में प.पू.आ.रत्नसागरजी म.सा. की प्रेरणा से गिरनार मध्य शेठ मानसंग भोजराज टोंक का निर्माण व शेठ मानसंग भोजराज धर्मशाळा का निर्माण (जो अभी दीगंबर जैनों के हाथ में है) जुनागढ़ गाँव में जिनमंदिर का निर्माण व अंजनशलाका प्रतिष्ठा (गिरनार पर शेठ मानसंग भोजराज टोंक उपर सभी जिनबिम्बों की अंजन–प्रतिष्ठा जुनागढ़ में हुई थी) (प्रे.पू.आ. रत्नसागरजी म.सा.) (वि.सं. 1901)

आधार– पू.आ. जिनरत्नसूरिजी म.सा. का रास, सिंधतीर्थयात्रासंग्रह, कच्छी वीशा ओसवाल वंशवेला, उज्जयंतगिरि–गिरनार तीर्थ (शेठ आणंदजी कल्याणजी पेढ़ी द्वारा प्रकाशित), वंश सूची, पारिवारिक नोंध, प्राप्त हस्तप्रतें व टब्बे, गिरनार तीर्थ, जैन तीर्थ सर्व संग्रह (भाग–1,2,3)

विश्ववन्द्यविभूति न्यायाम्भोनिधि
जंगमयुगप्रधान परम पूज्य आचार्य भगवंत
श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वरजी म.सा.
(श्री आत्मारामजी म.सा.) की
लाहौर (पाकिस्तान) म्यूजियम में
संग्रहित चरण पादुका

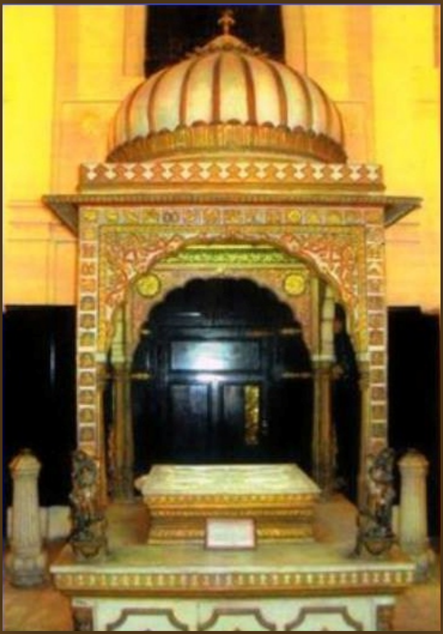

चित्र सौजन्य: श्री भंवरलाल जैन, चण्डीगढ़